॥ ओ३म् ॥

दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह

तथा

विशेष शंका समाधान

संग्रहकर्त्ता एवं अनुवादक

[illegible]

प्रकाशक :

आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट

मुख्य कार्यालय ४२७ नया बांस दिल्ली — ११०००६

[illegible]

४५५, खारी बावली, दिल्ली—६

२ एफ कमला नगर दिल्ली — ७

प्रकाशित ७७००

त संस्करण २२००

१९००
४२००

१.४२।००

सृष्टिसंवत् १९६०८५३०९५

दयानन्दाब्द १७०

मूल्य सजिल्द १६) रुपये

प्रकाशकीय

१. काशी शास्त्रार्थ शताब्दी के पुण्य अवसर पर इस ग्रन्थ को पहली बार १९६९ ई० में शीघ्रता में छापा गया था, जिससे कुछ आवश्यक शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तर छूट गये थे। प्रथम बार इसकी एक सहस्र प्रतियाँ छपी थीं। ७०० प्रतियाँ काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह में ही बिक गईं तथा शेष भी शीघ्र ही बिक गईं। काफी समय से इस ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। इस द्वितीय बार के प्रकाशन में उन सभी शास्त्रार्थों एवं प्रश्नोत्तरों को जो पहली बार रह गये थे संगृहीत कर दिया गया है। प्रथम बार के मुद्रण में होने वाली छापे की अशुद्धियों को भी सर्वथा अलग करने का यत्न किया गया है। इस ग्रन्थ की प्रेसकापी देखने में पं० विश्वदेव जी शास्त्री दिल्ली और आचार्य दिवाकर शर्मा शास्त्री एटा ने अथक परिश्रम किया है। हम इन दोनों विद्वानों के अतीव आभारी हैं। पुस्तक में शास्त्रार्थ के लिए (शा०) और प्रश्नोत्तरके लिए (प्र०) लिखा गया है।

२. इस पुस्तिका में पं० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र से उसकी आर्य-भाषा कराके एवं बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कृत जीवनचरित्र से शास्त्रार्थ और शङ्कासमाधान का संग्रह किया है। हुगली-शास्त्रार्थ और जगन्नाथ दास द्वारा लिखित आर्य प्रश्नोत्तरी के उत्तर को "महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" नामक पुस्तक से लिया है। सत्यधर्म विचार मेला चान्दपुर एवं काशी-शास्त्रार्थ को परोपकारिणी सभा द्वारा कृत प्रकाशन के अनुसार लिया है। सत्यासत्य विवेक (बरेली शास्त्रार्थ) को गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली द्वारा प्रकाशित दयानन्द-ग्रन्थसंग्रह मे संगृहीत किया गया है। जिसका भाषार्थ उन्होंने पं० लेखराम जी कृत उर्दू जीवनचरित्र के अनुसार कराके छापा था। जिस-जिस पुस्तक से जो जो संग्रह किया है, उसका नाम और पृष्ठसंख्या भी उसके साथ दे दी है। श्री देवेन्द्रनाथ जी कृत जीवन चरित्र के दो भाग हैं, अतः पृष्ठसंख्या अङ्क से पहले उसका संकेत १ तथा २ से किया है।

३. इस पुस्तिका में मौलवी अहमद हसन जालन्धर तथा अब्दुल रहमान

उदयपुर आदि अनेक शास्त्रार्थ ऐसे हैं जो श्री पं० लेखराम कृत उर्दू जीवन चरित्र से अनुवाद करके इस पुस्तक में प्रथम बार पृथक् छापे गये हैं।

४. इस संग्रह का क्रम समय के क्रम के अनुसार रक्खा है शास्त्रार्थ या प्रश्नोत्तर के साथ उसका समय भी इस पुस्तक में लिख दिया है ।

५. इस पुस्तक में शास्त्रार्थ के साथ साथ प्रश्नोत्तर भी उपयोगी समझकर दे दिये हैं। शास्त्रार्थ में भी प्रायः विपक्षियों से प्रश्नोत्तर ही हैं। निग्रहस्थानादि का कथन तो हुगली शास्त्रार्थ में ही देखा जाता है।

६. ट्रस्ट का विचार था कि विपक्षियों से हुए शास्त्रार्थ एवं प्रश्नोत्तरों को संग्रहरूप में छापा जाये। जिससे अनेक स्थानों में उपलब्ध ऋषि के तत्सम्बन्धी विचार पुस्तक रूप में एकत्र पाठकों को मिल सके। इसी प्रकार ऋषि के १४ लघुग्रन्थों का एक संग्रह भी पुस्तक रूप में ट्रस्ट ने प्रकाशित किया है जिससे ऋषि के समस्त विचारों का अध्ययन एवं अनुसन्धान तथा उनके ग्रन्थों से तैयार हुई सूचियों का लाभ सरलता से हो सके ।

७. श्री प० लेखराम कृत जीवनचरित्र महर्षि-निर्वाण के पश्चात् सब से प्रथम संग्रह किया गया था। अतः इसमें घटनायें सर्वाधिक हैं। अन्य चरित्र लेखकों ने भी इसी से सहायता ली है। कुछ घटनायें ऐसी हैं जो अन्य जीवनचरित्रों में सर्वथा अनुपलब्ध हैं। उन घटनाओं के संक्षिप्त रूप में अन्य जीवनचरित्रों में आ जाने पर भी मूल पुस्तक का होना आवश्यक ही रहता है। अतः आर्यजनता के चिर प्रतीक्षित हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन भी आर्ष प्रचार ट्रस्ट ने सफलता पूर्वक कर दिया है। ऋषिभक्त इसे मंगवा सकते हैं।

८. पं० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित्र से भाषार्थ करने का कार्य श्री पं. कविराज रघुनन्दन सिंह निर्मल कटरा खुशहालराय, चान्दनी चौक, दिल्ली ने बड़ी योग्यता और पुरुषार्थ से किया है। उस भाषार्थ के कारण ही इस पुस्तक के प्रकाशन में अत्यन्त सरलता हुई है। अतः हम उनका आभार प्रकट करते हैं।

स्व. दीपचन्द आर्य
प्रधान—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

प्राक्कथन

महर्षि दयानन्द सरस्वती को गुरु विरजानन्द से आर्ष ग्रन्थों के सत्य सिद्धान्तों के प्रचार की विशेष प्रेरणा मिली। दीक्षा को प्राप्त करके उन्होंने सत्य शास्त्रों के सिद्धान्तों का अपने पूर्ण सामर्थ्य से प्रचार किया और अपने सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में मनुष्य जाति की उन्नति का सबसे बड़ा कारण सत्योपदेश को बताया। जैसे—'सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य-जाति की उन्नति का कारण नहीं है'। (सत्यार्थप्रकाश-भूमिका)

महर्षि चाहते थे कि सब ही मनुष्य एक सत्य-वेदमत को स्वीकार करें जिससे मानव जाति का पूर्ण हित हो सके। एकमत हुए बिना मानव जाति की उन्नति नहीं हो सकती अर्थात् मानव-जीवन का जो मुख्य उद्देश्य है उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती जैसे—'मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिए है न कि वाद विवाद, विरोध करने कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात-रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सब को विरोध जाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो सभी एकमत हो जावें। इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एकमत में होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करें'।

(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, भूमिका)

एकमत होने की आवश्यकता, सम्भावना और विधि क्या है इस सम्बन्ध में ऋषि के लेख बहुत स्थानों पर मिलते हैं। तदनुसार अपने जीवन काल में अकेले महर्षि ने साहित्य, शङ्कासमाधान, शास्त्रार्थ, उपदेश द्वारा पूर्ण प्रयत्न किया। उससे मानव के विचारों में महान् क्रान्ति उत्पन्न हुई। सत्य के प्रतिपादन और असत्य के खण्डन में जो युक्ति और प्रमाण आज से सौ वर्ष पूर्व ऋषि ने दिये

थे उनका विपक्षी आज तक प्रतिवाद नहीं कर सके हैं। आज भी हम उनसे पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि सत्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन और असत्य का खण्डन बहुत दृढ़तापूर्वक करते थे। लोगों के हृदयों में उनके शब्द घुसकर विचारों में हलचल उत्पन्न कर देते थे, अतः वे स्वयं महर्षि से शङ्का-समाधान करते थे और अपना सामर्थ्य वेदादि शास्त्रों में न्यून देखकर अपने विचारों के विद्वानों से कहते थे कि यदि स्वामी दयानन्द का कथन मिथ्या है तो उनसे शास्त्रार्थ करो।

अनेक पण्डित तो महर्षि की विद्या और उनकी युक्तियां सुनके सामने ही नहीं आते थे। बहुत से विद्वान् बहाना कर देते थे। कुछ लोग सत्य का निर्णय नहीं किन्तु हुल्लड़ करना चाहते थे। कुछ की तो महर्षि से वार्तालाप और पाण्डित्यको देखकर घिग्घी ही बंध जाती थी और बिना शास्त्रार्थ और शङ्का-समाधान किये वापिस लौट जाते थे। कुछ लोग पण्डितों पर दबाव डालते थे पर पण्डित लोग चुपके से अन्यत्र खिसक जाते थे। कुछ विद्वान् तो आगमन की सूचना से ही शास्त्रार्थ-भय के कारण नगर छोड़कर चले जाते थे। कोई शास्त्रार्थ का समय निश्चित करके नहीं आते थे। कोई जनता को झूठमूठ यह दिखाना चाहते थे कि हम शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। ऐसे लोग जब महर्षि का गमन समय निश्चित हो जाता था तब शास्त्रार्थ के लिए कहते थे किन्तु महर्षि प्रत्येक समय सत्य-निर्णय के लिए तैयार रहते थे। अनेक प्रकार के बहाने लोग सत्य-निर्णय न करने के लिए करते थे जिनका उल्लेख जीवनचरित्रों में मिलता है। इस पुस्तक में उनके लिखने की आवश्यकता नहीं।

उपर्युक्त तथ्य एवं होने वाले शास्त्रार्थ और शङ्का-समाधानादि के प्रभाव द्वारा बहुत से लोग और स्वयं विपक्षी विद्वान् भी महर्षि के शिष्य बन जाते थे। प्रश्नोत्तर द्वारा बहुत से बड़े-बड़े नास्तिकों को महर्षि अपनी युक्तियों से आस्तिक बना देते थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश ने वाराणसी में शास्त्रार्थ-शताब्दी मनाकर बहुत उत्तम कार्य किया। विपक्षियों ने शास्त्रार्थ नहीं किया बहाने बनाये। समाप्ति वाले दिन बहुत से भांड आदि तत्वों को सभास्थल पर लेकर आये। जिन्होंने नारे आदि से आते ही शान्ति भङ्ग की, जिससे राज्याधिकारियों ने सभास्थल पर निषेध आज्ञा लागू कर दी। अतः शास्त्रार्थ नहीं हुआ।

सत्य-निर्णयार्थ परस्पर शङ्का-समाधान, वाद एवं शास्त्रार्थ बहुत उपयोगी है। यह प्राचीन ऋषि-मुनियों का सिद्धान्त और व्यवहार रहा है। कुछ समय से

यह अनार्यता फैली है कि मैं अपनी कहता रहूँ, तुम अपनी कहते रहो, परन्तु कोई किसी का खण्डन न करे। यह धारणा बिल्कुल मिथ्या एवं भ्रममूलक है। इसका प्रतिवाद करना आवश्यक है। महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखा है—"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।" इस तथ्य को समझते हुए जन साधारण के सामने सत्य सिद्धान्तों का प्रचार और असत्य का खण्डन दृढ़ता और उत्साह पूर्वक करना चाहिए। इसका लाभ अवश्यम्भावी है।

सत्य सिद्धान्तों के प्रचार के लिये शास्त्रार्थ बहुत उपयोगी हैं। यदि इससे पूरा लाभ होता दृष्टिगोचर नहीं होता है और कुछ कठिनाई अनुभव होती है तो उसमें कार्य प्रणाली का दोष है, शास्त्रार्थ का नहीं। ऐसा समझकर उसमें उचित सुधार करना चाहिए।

हमको इस शास्त्रार्थ-शताब्दी से प्रेरणा लेनी चाहिए। आर्यसमाज में कुछ विद्वान् ऐसे हों जिनका कार्य केवल शास्त्रार्थ और शङ्का-समाधान करना हो। उनके शङ्का-समाधान सम्बन्धी लेख प्रत्येक आर्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हों। आर्यसमाज की प्रत्येक पत्रिका में दो लेख सिद्धान्त सम्बन्धी अवश्य हों। एक लेख में वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन विपक्षियों के प्रश्नों के उत्तर सहित हो। दूसरे लेख में मिथ्या सिद्धान्तों का खण्डन युक्ति और प्रमाण सहित हो। एवं वे विद्वान् लोग सिद्धान्त सम्बन्धी साहित्य भी तैयार करें। इस प्रकार समस्त विपक्षियों का शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया जाये।

वैदिक धर्म में सिद्धान्तों की सत्यता एक बहुत बड़ी शक्ति है, जिसका समुचित उपयोग करके मानव का कल्याण करना चाहिए। जिन अन्य लौकिक न्यूनताओं से हम निराशा अनुभव करते हैं निश्चय ही वह भी उपर्युक्त शक्ति को समझकर तदनुसार दृढ़ उत्साह पूर्वक सत्य का प्रचार करते हुए पूरी हो जावेगी। जैसा कि एक आर्य द्वारा निराशा व्यक्त करने पर महर्षि ने यह तथ्य पूर्ण ही उत्तर दिया था कि 'ताजमहल के मालिक को अपने विचार का बना लो यह तुम्हारा हो जायेगा'।

वैदिक सिद्धान्त के प्रचारार्थ कुछ आर्य-नेताओं का यह कहना कि 'वर्तमान विधानसभा अथवा लोकसभा आदि में आर्यों का जाना आवश्यक है' यह उनका भ्रान्त प्रचार है। चुनाव प्रणाली में आर्य आदि सभी को समान मताधिकार है। ऐसी अवस्था में मतदाताओं का आर्य होना आवश्यक है। अन्यथा आर्येतर मतदाता आर्य नेताओं को वोट ही नहीं देंगे, हमारे नेता

आर्यसमाज को या अपने मतदाता दोनों में से एक को धोखा देंगे। मत लेने के लिए उनको सर्वप्रिय बनना पड़ेगा। यह सर्वप्रियता का लोभ धर्म-प्रचार में बाधक हो रहा है। वास्तविकता यह है कि यद्यपि वर्तमान शासन में अनेक दोष हैं तथापि धर्मप्रचार में बाधक नहीं। प्रथम अपनी सम्पूर्ण शक्ति शास्त्रार्थ आदि द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन और वेद-विरुद्ध मान्यताओं के खण्डन में लगानी चाहिए। मानवोन्नति का यही सबसे बड़ा साधन है। इस कार्य की उपेक्षा से आर्य सदस्यों तथा अधिकारियों तक की अवस्था प्रायः अन्यों से भिन्न नहीं रही है। कहाँ, पहले वैदिकधर्म-प्रचार में रत स्वाध्यायशील आर्यों की सत्यता का अदालतों में मान और अब कहाँ पदों के लिये निस्संकोच मिथ्या आचरण की नीति ! आर्य-पुरुषों को पुनः आत्मनिरीक्षण करके कर्त्तव्य के प्रति सजग तथा सन्नद्ध हो जाना चाहिये।

विनीत—
ईश्वरदत्त एम० ए०, आर्योपदेशक,
ट्रस्टी—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

शास्त्रार्थ-संग्रह की संक्षिप्त विषय-सूची

शास्त्रार्थ-संग्रह के शास्त्रार्थों की संक्षिप्त विषय-सूची भी पाठकों की सुविधा के लिये यहाँ प्रकाशित की जा रही है, जिससे पाठक शास्त्रार्थ के विषयों को शीघ्रता से भी देख सकते हैं और विषयानुसार एक ही विषय का अनेक बार जहाँ कुछ विशेष कथन है, उसका भी बोध कर सकेंगे। आर्य विद्वान्, पुरोहित, उपदेशक तथा अनुसन्धान करने वालों के लिये तो इस प्रकार की संक्षिप्त सूचियों से विशेष लाभ तथा समय की बचत हो जाती है। और नवीन पाठकों की भी संक्षिप्त विषय-सूची को पढ़कर रुचि के अनुसार विस्तृत शास्त्रार्थ को पढ़ने के लिये रुचि बढ़ेगी, ऐसी आशा से ही इस सूची का संग्रह किया गया है*।

सत्य-प्रचार एवं शास्त्रार्थ

बिना सत्य उपदेश के उपकार कभी नहीं होसकता ४७/१०, किस प्रयोजन के लिये समस्त देश में कोलाहल कर रखा है ५६/२४, मेरे सामने एक पर्दा डाल दिया जाय और वह उसकी ओट में शास्त्रार्थ कर ले ५६/२२, महाराज के मुख के सामने पर्दा डाला गया ५६/२७, हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़कर प्रीति पूर्वक सत्य का निश्चय करें ८६/८, स्वामी जी अपनी खोज तथा सत्य पर बड़े दृढ़ हैं १३/११, बहुत अच्छा, आप किसी विषय पर बातचीत करें १६५/२०, परन्तु लोग हठ मे न मानें तो आप क्या करेंगे। २०७/१, सभ्यता पूर्वक लेख के उत्तर में स्वामी जी विलंब कभी नहीं करते २१७/२।

शास्त्रार्थ शैली

हे हलधर! प्रकरण छोड़कर मत जाओ ११/२७, कुछ लोगों का विचार कोलाहल करने का है इसलिये सबको सुनाकर कह दिया गया १३/२२-२४, आपस में शास्त्रार्थ का ढंग यह था २/१२, जल्प और वितण्डा सज्जनों को करना उचित नहीं ४०/२४, प्रतिज्ञा को हानि होने से उनका पराजय हो गया ४१/१६, निग्रह स्थान सब पराजय के स्थान होते हैं ४१/२३, हम (पादरी) दो दिन से

---

* इस सूची में संकेत—वक्ररेखा से पूर्वसंख्या पृष्ठ की तथा बाद की संख्या पंक्ति की है। (सं०)

अधिक नहीं ठहर सकते ८६/११-१८, स्वामी जी ने कहा कि अधिक नहीं तो एक वाक्य पर दस बार प्रश्न होने चाहियें १५६/२३, प्रश्नोत्तर के लिखे विना बहुत हानि है १५९/२९ में १६०/६, असत्य का खण्डन कोमल वाणी के साथ करें ६१/१०-१७, मौलवी अल्लाह् के चमत्कार को सिद्ध करेंगे तथा स्वामीजी उसका खण्डन करेंगे ११४/२४ से ११५/१ तक, तुच्छ और गर्वपूर्ण कार्रवाही के अनुसार चलना मेरे लिये आवश्यक नहीं १२६/१५, प्रबन्धकों में ८ नाम और बढ़ाये जावें १४४/११-२६, सबके सामने प्रश्नोत्तर किये जायें और लिखाया भी जावे १६०/५, १६०/३२, फिर मैं आर्ष ग्रन्थों की रीति के अनुकूल अर्थ करूंगा ६४/६ ।

ऋषि की प्रतिभा -आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी १२६/१४, व्याकरण विषयक शास्त्रार्थ में प्रशस्त कर दिया जायेगा ६५/२५, विपक्षियों की प्रतिक्रिया—परिणाम यह निकला पंडितजी परास्त हुए ३/१७, हीरावल्लभ की न्यायप्रियता देखकर गद्-गद् हो गये ४/८, पंडित अङ्गदराम जी के सम्बन्धियों ने भी अपनी पूजा की मूर्त्तियां गंगा में फेंक दीं ७/१२, प्रतिज्ञा की हानि होने से उनका पराजय हो गया ४१/१६, फिर जाति साधन से प्रतिमा का स्थापन कर लेंगे ४१/२३, तुमको मैं एक हजार रुपया दूंगा यदि स्वामीजी को मार दो ६०/११, फिर आजीविका ही जाती रहे तब निर्वाह् कैसे हो ७५/१६ । -

प्रामाणिक अप्रामाणिक (आर्ष और अनार्ष) ग्रन्थ

भागवत् में विस्तार शब्द अशुद्ध और व्याकरण के विरुद्ध ७/१, स्वामी जी ने हलधरओझा से कहा तुम तो पाणिनि के बाल के समान भी नहीं हो १२/२३, (नवीन वेदान्ती) शंकर और रामानुज दोनों का ठीक नहीं प्रत्युत भेद-अभेद दोनों हैं १७/२६. कोई ने मिथ्या जाबालोपनिषद् रच लिया है ५२/२०, "अन्यक्षेत्रे-कृतं०" इस प्रकार के श्लोकों को सुनने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट होने से सदा पाप में प्रवृत्त हो जाते हैं । ५२/२४, पुराण शब्द का अर्थ ४८/१६ से ४९/१८, चारों वेदों को प्रमाण मानता हूँ ६१/१३–१९, पुराण उपपुराण, इनके अवलोकन और अर्थ में श्रद्धा नहीं करता इनके पुराण की कथा तो क्या कथा है ६१/३०, हम वेद, पाणिनि और मनुस्मृति (प्रक्षिप्त भाग को छोड़कर) के सिवाय अन्य ग्रन्थों का प्रमाण नहीं मानते ३७/१५–५७, पुराण वञ्चक लोगों के रचे हुये हैं ३७/१९, सत्यधर्म विचार नामक पुस्तक जिसने यन्त्रालय ने छपवाई है, उसका मत उसमें है, मेरा उसके मत में आग्रह नहीं ६२/२९, सारा भारत और वाल्मीकि रचित रामायण का प्रमाण नहीं ६२/१, शाखाओं में जो कर्म कहे हैं वे वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं ६२/२३, हम ज्योतिष शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं फलित भाग को नहीं १५०/३१ से १५१–८ तक, तर्कशास्त्र

प्रमाण और अनुभव आप्त पुरुषों का ही सत्य होता है १६६/५, पादरी साहब कहे कि प्राचीन बातें और सिद्धान्त अब मानने के योग्य नहीं तब तो तौरेत और जबूर इत्यादि ग्रन्थ····················वे भी अब न माननी चाहियें १७४/१०–१५, मौलवी साहव (प्र०) ऐसा कौन सा मत है जिसकी मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो २५६/५ से २५८/२६, महाराज ने महाभाष्य के अनुसार व्याप्ति के लक्षण किये १२६/५, महीधर की टीका प्रायः अशुद्ध है १६६/१६, स्वामी जी ने कहा वेदों में अमर-कोष प्रमाण नहीं १६८/६ ।

वेद सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ३२/८, वेद में परमेश्वर की स्तुति है तो क्या उसने अपनी प्रशंसा लिखी ७६/१२, भगवान् का जब स्वरूप और शरीर नहीं तो मुख कहां से आया जिससे वेद कहा ७६/१७–२६, कलम और दवात और वाणी के विना रचे नहीं जाते ईश्वर नें कैसे बनाये ११४/३, वेद पढ़ने का अधिकार सबको है १६८/२३, सबसे उत्तम वेद की शिक्षा है १७५/२८, वेद और ईश्वर का कार्यकारण सम्बन्ध ३२/१३, वेद में इतिहास नहीं १२३/१६–२०, हजारों, लाखों ऋषिमुनि उनके (वेद के) स्थानापन्न होते रहे २०८/२५, परमात्मा ने सृष्टि की आदि में श्री ब्रह्माजी के हृदय में वेदों का प्रकाश किया, यह बात प्रमाण करने योग्य नहीं २४७/६–२६, वेद-विषयक शास्त्रार्थ मौलवी से २६१/२० से २६२/६, वेद की विशेषता क्या है ? २६४/१३ से २६५/३ तक, मौलवी से शास्त्रार्थ यदि वेद ईश्वर से बनाया होता तो० २६६/४ से २६७/८ तक, मोक्षमूलर आदि विद्वान् भी संस्कृत भाषा तथा ऋग्वेदादि को सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं २६६/२४ ।

ब्रह्मा के व्यभिचार विषयक—क्या एक नाम के बहुत से मनुष्य नहीं हो सकते ? २/२१, "सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्" का तात्पर्य ११/१६, "समर्थ-पदविधि" का विधान कहां १४/७, बाहर के पदार्थ का ध्यान करना, योगी लोग को नहीं लिखा ५३/६, भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् (विभू० २६) का सत्यार्थ ५५/१०–३०, अग्नि शब्द का क्या अर्थ है ५८/२५ से ५६/१४, कृष्ण पर जो अभियोग लगाये जाते हैं वे सब निर्मूल हैं १०८/१७, वेद और गंगा-यमुना १०८/२२ से १०६/६, वेद में अश्वमेधादि शब्द का तात्पर्य–११०/२४, समस्त प्रकरण पढ़ लेते तो शंका न करते १०६/१, हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे० अशुद्ध भाष्य १०६/२५, अशुद्ध भाष्य के कारण आपको सन्देह हुआ १६/२७, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी

जानने वाले वेदों के सिद्धान्तों का निर्णय करें १६७/७, क्या लक्ष्मीविष्णु की स्त्री और साकार है १६८/८, "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" का अर्थ-३७/१-८।

निम्न प्रमाण मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं करते

"देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च" ६/२३, एक भील ने द्रोणाचार्य की मूर्त्ति बनाकर और सामने रखकर धनुषविद्या सीखी १६/१-१०, देवता के स्थान कम्पायमान होते और प्रतिमा हंसती है ३०/२५, उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टा० ३२/२१, तेन पितृलोकेन महीयते ४२/३० प्रतिमा शब्द का अर्थ "प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा" ४०/२० से ४८/१४ तक, विषयवती वा प्रवृत्ति-रुत्पन्ना मनसः० ५२/३१ से ५५/३०, ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्० तथा त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं० ५८/७, ६-२४, आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो० ६५/२०, से ६७/२०, गणानान्त्वा० ११३/१२-२५, मनुस्मृति में आये प्रतिमा और देव शब्दों से मूर्त्ति-पूजा का सम्बन्ध नहीं ७३/१४, मूर्त्तिपूजा पाणिनि के सूत्र से सिद्ध नहीं २४५/१८ से २४६/१६, वेदों में आया पुराण शब्द भूतकाल वाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ३३/६, देवालय, देवायतन, देवागार तथा देवमन्दिर इत्यादिक सब नाम यज्ञशालाओं के ही है ४६/१६-५२/३।

धर्म और अधर्म

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इसको काम कहते हैं १०१/१७, अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को अनर्थ कहते हैं १०१/१७, धर्म अर्थादि चारों को सिद्ध करना उचित है १०१/२०, ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इसको धर्म कहते हैं १०१/२१, १५१/१७, १५३/१६, २६१/६, २६४/१५,

वैदिक कर्म करने लगोगे तब तुम्हारा बड़ा मान होगा ६/३, उत्तम कर्म करना चाहिये ७७/११-२७, देखो ! सब अन्याय और अधर्म पक्षपात से होता है १०१/१३, धन की वृद्धयादि अन्याय करके करने से अधर्म होता है १४६/२६, आत्म-घात करने में पाप ही होता है १५२/१८, सत्य के कहने में अशिष्टता कभी नहीं हो सकती १८८/३२, भोजन और विवाहादि व्यवहार धर्म से नहीं किन्तु विशेष रीतियों तथा समीपस्थ वर्गों से है १२६/१६-१३०/१३, एक मेज पर खाने से क्या लाभ होगा १३२/२२, खाना पीना आदि ये सब अपने अपने देश व्यवहार हैं धर्म नहीं १५१/२६, कुत्ते भी तो मिलकर एक स्थान पर खाते हैं परन्तु खाते-खाते आपस में लड़ने लगते हैं १६४/२३, सब पापों का बाप लोभ है २५३/१८।

भक्ष्याभक्ष्य

एक साथ खानपान सम्बन्धी प्रश्नोत्तर १३०/२०–१३१/१५, १३२/१७–२७, कयामत की अवस्था में ईश्वर चिन्तन हो सकता है १३३/३–१६, मांस-भक्षण—प्रश्नोत्तर १३१/१६–१३२–६, मांस खाना वेदविरुद्ध है? १३१/१६, मांस खाना आत्मा के लिए हानिकर १३२/१, योगविद्या नहीं आती १३२/२, सत्य के विवेक से वञ्चित रहता है १३२/३।

वर्णाश्रम

संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक नहीं रहना चाहिये ३/१, १४६/२५–१४७/६, ब्राह्मणादि का उपनयन संस्कार होना आवश्यक है ५/२६, वर्णव्यवस्था ७६/२४–७७/६, उपनयन सम्बन्धी प्रश्न ५/२६–६/६, मनुष्य के लिये अनेक स्त्रियों के करने का निषेध वेद में लिखा है १५०/२४, पच्चीस वर्ष से पूर्व विवाह न करना २३०/१७, मनुष्य एक जाति के हैं अथवा कई जातियों के २५६/२–२६०/२१।

दार्शनिक तथा विविध विचार

लक्ष्य का तो लक्षण होता है परन्तु लक्षण का लक्षण नहीं होता ५/१३, जिस समय से सृष्टि का क्रम हुआ है उस काल की कोई संख्या नहीं ६२/१८, सृष्टि कब उत्पन्न हुई ८०/१८, सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया ८२/१३–२७, ६५/१८, संसार को बने कितने वर्ष हो गये ६४/१–६५/१७, जब प्रलय करता है तब इस स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक् कर देता है ६१/३२, सृष्टि प्रवाह से अनादि है १४८/२५, १४६/१, परमाणु के प्रकृत, अव्याकृत, अव्यक्त, कारणादि नाम भी १४७/३३, जीव और परमात्मा में व्याप्य व्यापक सम्बन्ध १४८/१५, इच्छा द्वेष प्रयत्न आदि जीव के लक्षण १५०/१३, जीव तथा ईश्वर दोनों अनादि हैं १२८/५, ईश्वर के ज्ञान में जीव संख्यात हैं १५२/२२, २४८/५, जीव का प्रकार एक है और जाति अर्थात् योनियां अनेक हैं ७६/३१, १५२/२३, देह भिन्न तथा जीव सबका एक सा है जैसा चींटी का वैसा ही हाथी का ८०/७, जगत् का कारण अनादि, तथा जगत् को बनाने वाला परमात्मा, जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं ऐसे माने बिना किसी प्रकार निर्वाह नहीं हो सकता ६३/२६–३२, सब पदार्थों का कारण अनादि है तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है ६७/१, जीव का कर्मानुसार न्यूनाधिक फल विषयक प्रश्नोत्तर १४६/३–२०, हम पृथिवी में सुखादिकों की वृद्धि किसी की व्यवस्था सापेक्ष होने से अनियत मानते हैं १५१/१३, आवागमन सत्य है १०७/१६–१०८/६, ११६/१४–

(शेष पृ० २६७ के पश्चात्)

ओ३म्

दयानन्द-शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

[illegible]-पूजा (लिखित शास्त्रार्थ)

(जयपुर की संस्कृत पाठशाला के पंडितों के साथ)

स्वामी दयानन्द ने दस या पन्द्रह प्रश्न लिखकर जयपुर की संस्कृत पाठशाला में पंडितों के पास भेजे। पंडित महाशयों ने इनके उत्तर में गाली-गलौज के सिवाय और कुछ नहीं लिखा। स्वामी जी ने इस पत्र में आठ प्रकार के दोष निकालकर हरिश्चन्द्रादि महान् पुरुषों के पास भेज दिये। उस पत्र को पढ़कर सबने अत्यन्त शोक प्रकट किया और पत्र का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। फिर सब पंडित एकत्रित होकर व्यास बक्षीराम जी के पास गये और कहा कि हमारा स्वामी जी से शास्त्रार्थ करवा दो। पंडितों के कहने पर व्यास जी ने स्वामी जी को महलों में बुलवाया, सब पंडित भी एकत्रित हुए और शास्त्रार्थ होने लगा। अन्त में पंडित निरुत्तर होकर चुप हो गए, और एक मैथिल पंडित ने कहा कि महाभाष्य की गणना व्याकरण में नहीं है। स्वामी जी ने उसको यही बात लिख देने के लिए कहा। परन्तु उन्होंने नहीं लिखा और रात्रि विशेष हो गई, यह बहाना करके चुप हो गये।

(आर्य धर्मेन्द्र जीवन, रामविलास शारदा पृ० ३१, ३२, लेखराम पृ० ५५)

लिखित शास्त्रार्थ (जयपुर)

(जयपुर के जैनगुरु के साथ)

जयपुर में जैनियों के एक गुरु ने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की परन्तु वह स्वामी जी को अपने मकान पर ही बुलाना चाहता था इस कारण मौखिक शास्त्रार्थ न हुआ। और स्वामी जी ने १५ प्रश्न लिखकर उनके पास भेज दिये, जिनका उत्तर यती जी से न बन पड़ा परन्तु उन्होंने ८ प्रश्न लिखकर स्वामी जी के पास भेज दिये, जिनका उत्तर स्वामी जी ने बड़ी योग्यता से दिया। (आर्य धर्मेन्द्र जीवन, रामविलास शारदा पृ० ३२, लेखराम पृ० ५६)

ईसाईमत

(पादरी ग्रे साहब आदि से अजमेर में शास्त्रार्थ—जून १८६६)

३० मई, सन् १८६६ को स्वामी जी पुष्कर से अजमेर आये। वहाँ स्वामी जी का पादरी लोगों से मित्रतापूर्ण शास्त्रार्थ हुआ। एक तो रैवरेण्ड जे० ग्रे साहब मिशनरी प्रेस की टेरेन मिशन अजमेर और दूसरे पादरी राबिन्सन शूलब्रेड साहब थे और तीसरे साहब पादरी मेरवाड़ अर्थात् ब्यावर थे। प्रथम तीन दिन ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम और वेद-विषय में बातचीत रही। स्वामी जी ने उनके उत्तर उत्तम रीति से दिये। चौथे दिन ईसा के ईश्वर होने पर और मर-कर जीवित होने और आकाश में चढ़ जाने पर स्वामी जी ने कुछ प्रश्न किये। दो-तीन सौ मनुष्य इस धर्मचर्चा के समय आया करते थे। अन्तिम दिन जब पादरी लोग इस विषय पर कोई बुद्धिपूर्ण उत्तर न दे सके तो स्कूल के लड़के ताली पीटने लगे परन्तु स्वामी जी ने रोक दिया। आपस में शास्त्रार्थ का ढंग यह था कि प्रथम एक पक्ष प्रश्न ही प्रश्न करे और दूसरा पक्ष उत्तर ही उत्तर दे, बीच में प्रश्न न करे। तत्पश्चात् इसी प्रकार दूसरा पक्ष करे। प्रथम प्रश्न पादरी लोगों ने किये जिनके उत्तर स्वामी जी ने दिये। इस शास्त्रार्थ में ईसाइयों ने एक वेदमन्त्र का भी प्रमाण दिया था जिसे स्वामी जी ने अस्वीकार किया कि यह वेदमन्त्र नहीं। उन्होंने कहा कि हम वेद लाकर दिखावेंगे परन्तु वेद से न दिखला सके।

राबिन्सन साहब का जो उन दिनों बड़े पादरी थे—एक प्रश्न यह था कि ब्रह्मा जी ने जो व्यभिचार किया है उसका क्या उत्तर है?

स्वामी जी ने कहा कि क्या एक नाम के बहुत से मनुष्य नहीं हो सकते? फिर यह कौन बात है कि यह ब्रह्मा वही है प्रत्युत कोई और व्यक्ति होगा। वे महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे। (लेखराम पृष्ठ ६३)

संन्यासाश्रम

(पं० रामरत्न अजमेर से संन्यासाश्रम के विषय में प्रश्नोत्तर)

सन् १८६६ में जब स्वामी जी अजमेर में थे और मूर्तिपूजा तथा भागवतादि का खण्डन कर रहे थे तो उन दिनों रामरत्न नामक एक पंडित ने जो ग्राम रामसर जिला अजमेर में रहता था और ग्राम का पटवारी भी था, सम्भवतः दस प्रश्न बनाकर भेजे थे जो इस विषय के थे—

संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक न रहना चाहिए. घोड़ों की बग्घी में न चढ़ना चाहिए आदि ।

ये प्रश्न संस्कृत में थे । स्वामी जी ने प्रत्येक प्रश्न का उत्तर विश्वसनीय पुस्तकों के प्रमाणों सहित लिख भेजा और उसके लेख में जो अशुद्धियां थीं, वे भी साथ ही लिखकर भेज दीं । इन प्रश्नों का एक उत्तर यह था कि निस्सन्देह संन्यासी को एक स्थान पर तीन दिन से अधिक न रहना चाहिए परन्तु जहां अन्धकार हो रहा हो तो वहां उपदेश के लिये अधिक रहना उचित है । (लेखराम पृष्ठ ६६)

जब महाराज को कर्णवास में निवास करते हुए बहुत दिन हो गये और उनकी लोकप्रियता बढ़ती गई तब भगवानदास आदि को महाराज की बढ़ती हुई लोकप्रियता असह्य हो गई । उन्होंने सोचा कि उनके मार्ग से दयानन्द रूपी कंटक तभी दूर हो सकता है जब उसे शास्त्रार्थ में परास्त किया जावे । अतः वह अनूपशहर निवासी पं० अम्बादत्त पर्वती को जो संस्कृत में बहुत व्युत्पन्न समझे जाते थे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुला लाये । पं० अम्बादत्त से शास्त्रार्थ हुआ । परिणाम यह निकला कि पण्डित जी परास्त हुए और उन्होंने एक सत्यप्रिय मनुष्य की भांति भरी सभा में मुक्तकंठ से कहा कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं, वह सत्य है, मूर्तिपूजा अवैदिक और त्याज्य है ।

(श्री देवेन्द्रनाथजी कृत जीवनचरित्र, भाग १, पृष्ठ १०५, लेखराम, पृ० ७६)

नवम्बर १८६७)

पौराणिकों को पं० अम्बादत्त के पराजय की कालिमा धोने की चिन्ता थी ही ! वे अनूपशहर गये और पं० हीरावल्लभ को बुलाकर लाये । पौष मास की किसी तिथि को पं० हीरावल्लभ कर्णवास आये और बड़े ठाठ से आये । वह अपने आराध्य देवों की मूर्तियों को एक सुन्दर सिंहासन में सजाकर साथ लाये । शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । उसमें पं० हीरावल्लभ प्रवृत्त हुए तो अनोखे ढंग से । देवमूर्तियों का सिंहासन सामने रखकर और यह प्रतिज्ञा करके कि

मैं इन देवमूर्तियों को दयानन्द के हाथ से भोग लगवाकर उठूंगा। छः दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा, नियम और न्यायपूर्वक होता रहा। छठे दिन पं० हीरावल्लभ ने अस्त्र-शस्त्र डाल दिये, अपनी हार स्वीकार की, वाणी से भी और कर्म से भी। पण्डित जी ने महाराज को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और साथ ही देवमूर्तियों को भी सदा के लिए हाथ जोड़कर गंगाजल में प्रविष्ट करा दिया। उन देवमूर्तियों को जिन्हें वे दयानन्द के हाथ से भोग लगवाने की प्रतिज्ञा करके शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए थे, स्वयं भोग लगाना छोड़कर शास्त्रार्थ से निवृत्त हुए। सभा में २००० मनुष्य उपस्थित थे। स्वामी जी पं० हीरावल्लभ की न्यायप्रियता देखकर गद्‌गद हो गये। और उन्होंने पण्डित जी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। निष्पक्ष मनुष्यों ने भी उन्हें हृदय से साधुवाद कहा। सबके मुखमंडल हर्ष से खिल उठे। मूर्तिपूजकों के हृदय शोक-सन्तप्त और उनके मुख विषाद से तेजहीन हो गये और आह करते और ठण्डे सांस भरते सभा से उठकर चले गये। इस शास्त्रार्थ का यह प्रभाव हुआ कि सैकड़ों मनुष्यों की आस्था मूर्तिपूजा के ऊपर से उठ गई और बीसियों लोगों ने पं० हीरावल्लभ का अनुकरण करते हुए अपनी देवमूर्तियां गंगा के प्रवाह में डाल दीं। (देवेन्द्रनाथ १। १११, लेखराम पृष्ठ ७७)

मूर्त्तिपूजा

(साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती से रामघाट पर शास्त्रार्थ—सन् १८६७

अगहन १९२४ वि०)

खेमकरन जी भूतपूर्व ब्रह्मचारी वर्तमान संन्यासी कर्णवास निवासी ने वर्णन किया कि अगहन मास, संवत् १९२४ में स्वामी जी रामघाट में आये। वहाँ एक साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती रहते थे। लोगों ने उनसे जाकर कहा कि एक स्वामी आया है जो गंगादि तीर्थ, महादेवादि की मूर्ति और भागवत, वाल्मीकि आदि सब का श्रुति और स्मृति के अतिरिक्त खंडन करता है। ग्राम में कोलाहल मच गया। अन्त में कृष्णेन्द्र को लोग उसके बार-बार अस्वीकार करने पर भी वहाँ बनखंडी पर ले आये जहां स्वामी जी ठहरे हुए थे और शास्त्रार्थ आरंभ किया। इतने में एक व्यक्ति ने कृष्णेन्द्र से पूछा कि महाराज! मैं महादेव पर जल चढ़ा आऊँ तो स्वामी जी बोले कि यहाँ तो पत्थर है, महादेव नहीं। "महादेवो कैलासे वर्तते" अर्थात् महादेव कैलास में है। तब कृष्णेन्द्र ने कहा कि यहां महादेव नहीं है?

स्वामी जी ने कहा कि वैह महादेव मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ भी है, वहाँ जाना व्यर्थ है। तब कृष्णेन्द्र ने गीता के इस श्लोक का प्रमाण दिया—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर निराकार है, अवतारधारी नहीं बन सकता। देह-धारना केवल जीव का धर्म है।

इसका कोई उत्तर कृष्णेन्द्र से न आया। वह स्वामी जी के सामने बैठा-बैठा ही घबरा गया और घबराकर वही गीता का श्लोक बार-बार लोगों की ओर मुख करके (मुख से कफ निकलता था) पढ़ने लगा। तब स्वामी जी ने कहा कि तू लोगों से शास्त्रार्थ करता है या मुझसे शास्त्रार्थ करता है? मेरे सामने होकर बात कर।

फिर जब इस पर भी वह बात न कर सका और कुछ दशा भी ठीक न रही तो "गन्धवती पृथिवी" "धूमवती अग्निः" इस प्रकार की न्याय की बात चली, जिस पर उसने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है। स्वामी जी ने कहा कि लक्ष्य का तो लक्षण होता है परन्तु लक्षण का लक्षण नहीं होता। पूज्य का पूज्य और चून (आटा) का चून क्या होगा?

इस पर सब लोग हँस पड़े और वह घबराकर उठ खड़ा हुआ। सब लोग कहने लगे और जान गये कि स्वामी जी की जीत हुई।

(लेखराम पृष्ठ १००, १०३)

यज्ञोपवीत

(शिवलाल वैश्य रईस डिबाई, जि० बुलन्दशहर से प्रश्नोत्तर—फरवरी १८६८)

ठाकुर शिवलाल वैश्य रईस डिबाई जि० बुलन्दशहर ने वर्णन किया कि दूसरी बार स्वामी जी मुझे फागुन बदि १३ संवत् १९२४ तदनुसार २१ फरवरी, सन् १८६८ को कर्णवास में मिले। वहां पहुँचकर क्या देखता हूँ कि आप दो-चार ठाकुरों और वैश्यों के लड़कों के उपनयन संस्कार कराने का यत्न कर रहे हैं। मैंने जाकर नमस्कार किया और प्रश्न किया।

प्रश्न—महाराज! यदि यज्ञोपवीत न हो तो क्या हानि?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का उपनयन संस्कार होना आवश्यक है, क्योंकि जब तक उपनयन संस्कार नहीं होता तब तक मनुष्य को वैदिक कार्य करने का अधिकार नहीं।

प्रश्न—एक व्यक्ति उपनयन संस्कार करावे परन्तु शुभ कर्म्म न करे और

दूसरा उपनयन संस्कार नहीं करावे और सत्यभाषणादि कर्म में तत्पर हो, उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि श्रेष्ठ वह है जो उत्तम कर्म करता है परन्तु संस्कार होना आवश्यक है क्योंकि संस्कार न होना वेद, शास्त्र के विरुद्ध है और जो वेद-शास्त्र के विपरीत करना है वह ईश्वरीय आज्ञा को नहीं मानता और ईश्वरीय आज्ञा को न मानना मानो नास्तिक होने का लक्षण है।

(लेखराम पृष्ठ ६४)

गुसाईं बलदेवगिरि जी ने वर्णन किया कि स्वामी जी जब संवत् १९२५ में सोरों में आये थे तो उनका वहाँ अंगदराम शास्त्री से शास्त्रार्थ हुआ। पंडित अंगदराम जी संस्कृत के पूर्ण विद्वान् और व्याकरण के पूरे प्रकाण्ड पंडित थे। बीसियों पंडित उनसे संस्कृत पढ़ते थे और केवल पढ़ाते ही नहीं प्रत्युत वे पंडितों में शिरोमणि गिने जाते थे। इस ओर उनकी समानता करने वाला कोई न था और न किसी का साहस पड़ता था कि अंगदराम जी से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हो। उनके नाम से ही पंडित लोग घबरा जाते थे। विशेषतया वे न्याय और व्याकरण में पूर्ण दक्षता रखते थे। कस्बा बदरिया जो सोरों के अत्यन्त समीप है, वहाँ के रहने वाले थे। पंडित नारायण चक्रांकित जिसे स्वामी जी ने हराकर अपना शिष्य बनाया था, वह पं० अंगदराम के पास पढ़ा करता था। उसने जाकर पं० अङ्गदराम जी से कहा कि एक ऐसे स्वामी आये हैं जिनके सामने किसी को मुख से बात निकालने की भी शक्ति नहीं। पंडित जी तुम चलो। पंडित अङ्गदराम जी आये और आते ही संस्कृत में मूर्तिपूजा पर विचार होने लगा। यह पंडित जी महाराज शालिग्राम की पूजा करते थे, और नित्य भागवत की कथा बाँचा करते थे। स्वामी जी ने वेद और सत्य-शास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा का अत्यन्त बुद्धिपूर्वक खंडन किया और साथ ही भागवत को भी खंडन करने से न छोड़ा। पंडित अङ्गदराम जी से भागवत के विषय में बहुत सी बातें हुईं। वे बहुत विद्वान् थे, स्वामी जी की विद्या पर मोहित हो गये। स्वामी जी ने उनको भागवत के बहुत से दोष बतलाये थे। अन्तिम दोष यह था--

"कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः
राज्ञां चोभयवंशानां चरितं परमाद्भुतम् ॥"

यह दशम स्कन्ध का पहला श्लोक है। इस में स्वामी जी ने विस्तार शब्द अशुद्ध और व्याकरण के विरुद्ध बतलाया था कि विस्तर चाहिए, विस्तार नहीं। क्योंकि अष्टाध्यायी में लिखा है विस्तरे शब्द में "घञ्" प्रत्यय हो अशब्द में। इस पर स्वामी जी ने बहुत से श्लोकों का प्रमाण दिया कि देखो "विस्तरेण व्याख्याता" सब स्थान पर ऐसा लिखा है कि विस्तार अशुद्ध है। वार्ता या वंश के लिये विस्तर और मापादि के लिए विस्तार आता है। उसी को सुनकर पंडित अंगदराम जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि महाराज! आपकी बातों को कहाँ तक श्रवण करूं—सब सत्य हैं। अन्त में पंडित जी अपना पूर्ण सन्तोष हो जाने के पश्चात् शालिग्राम की मूर्ति जिसे वह पूजते थे, सामने गंगा में डाल दी और भागवतादि पुराणों की कथा करनी पूर्णरूप से छोड़ दी प्रत्युत भागवत का बहुत तिरस्कार किया। उनकी यह दशा देखकर गुसाईंबलदेवगिरि जी ने भी बहुत सी बहलियां बटियां गंगा में फेंक दीं और पंडित अङ्गदराम जी के सम्बन्धियों ने भी अपनी पूजा की मूर्तियां गंगा में फेंक दीं। (लेखराम पृष्ठ १०८)

मूर्त्तिपूजा

(ठाकुर किशनसिंह से कायमगंज में प्रश्नोत्तर—संवत् १९२५)

पंडित श्यामलाल कान्यकुब्ज कायमगंज ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी शिवालय में आनकर उतरे तो लोगों से पूछा कि यह क्या है? लोगों ने कहा कि यह शिवालय है, कहा कि तुम लोग स्वयं ही कहते हो कि शिवालय तो कैलास में है क्योंकि शिव वहां रहते हैं। इसलिए यह तो सराय बैठक है। हम को भी स्मरण किया, हम ठाकुर किशनसिंह भूश्रित सहित वहाँ गये। किशनसिंह ने पूछा कि तुम शिवलिंग पूजा का निषेध करते हो परन्तु इसका तो शास्त्रों में लेख है।

स्वामी ने कहा कि कैसी लज्जा की बात है कि तुम लिंग की पूजा करते हो और फिर जब लिंग पृथक् होकर यहां आ गया तो शिव कैलास में हीजड़ा रह गया। (लेखराम पृष्ठ ११८)

क्या मोहम्मद पैगम्बर है?

(मुसलमानों से फर्रुखाबाद में प्रश्नोत्तर—सं० १९२५)

ला० मुन्नीलाल वैश्य ने वर्णन किया कि स्वामी जी संवत् १९२५ में जब फर्रुखाबाद में ठहरे हुए थे तो एक दिन तीसरे पहर चार पांच मुसलमान स्वामी जी के पास गये। मुसलमानों ने पूछा कि "मोहम्मद को खुदा ने हमारे लिए भेजा है या नहीं?"

स्वामी जी ने हम से कहा कि नियम होना चाहिए कि सत्य को सुनकर मनुष्य विचार करे न कि घबराकर लड़ने को दौड़े। अब तो यह धार्मिक बात करते हैं पर पीछे युद्ध होगा। मैंने उनसे कहा कि स्वामी जी कहते हैं फिर लड़ोगे तो नहीं? उन्होंने कहा कि हम ऐसा नहीं करेंगे, आप तो बलवान् हैं। सारांश यह कि यह बात स्वामी जी ने तीन बार कही तब कहा कि "मौहम्मद अच्छा मनुष्य नहीं था। तुम लोगों ने उसका अनुकरण किया यह बुरा किया। जब चोटी कटवाई तो दाढ़ी रखने से क्या प्रयोजन? ऊँची बाँग देते हो, यह क्या ईश्वर की उपासना है?"

खतने के विषय में भी पूछा था परन्तु कोई उत्तर मुसलमान न दे सके। अन्त में चले गये। (लेखराम पृष्ठ १२५)

आदम हव्वा का वियोग

(मौलवी अहमद अली दूबान से कायमगंज में प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८६८)

मौलवी अहमद अली दूबान से मनुष्योत्पत्ति विषय पर बातचीत हुई तो स्वामी जी ने पूछा कि आदम-हव्वा का वियोग क्यों हुआ? खुदा ने उनके मन में प्रेम क्यों न उत्पन्न किया? जो वियोग का दुःख न सहते। इसका मौलवी कोई उत्तर न दे सका। मौलवी स्वामी जी की बात से प्रसन्न हुआ और उनके कथन की पुष्टि करता रहा। उसने महाराज की बहुत प्रशंसा की और कहा यह फकीर बहुत बड़ा आलिम (विद्वान्) है और बुतपरस्त नहीं है।

(देवेन्द्रनाथ १। १३०. लेखराम पृ० ११९-१२०)

मूर्तिपूजा

(पं० हरिशंकर कन्नौज से प्रश्नोत्तर—संवत् १९२६)

पंडित हरिशंकर जी ने वर्णन किया कि संवत् १९२६ में जब स्वामी जी कन्नौज में ठहरे हुए थे तो मूर्तिपूजा पर हमारी उनसे यह बातचीत हुई—

स्वामी जी ने कहा कि मूर्तिपूजा का शास्त्रों में निषेध है।

हमने कहा कि आप वचन पढ़ें।

स्वामी जी ने कहा कि तुम कोई विधिवचन पढ़ो। हमने कहा कि श्रुति, स्मृति, सदाचार इत्यादि अर्थात् सदाचार श्रुति, स्मृति के अनुसार है और मूर्तिपूजा सदाचार है (उस समय हमने और ग्रन्थ नहीं देखे थे और न वेद पढ़े थे)।

स्वामी जी ने कहा कि सदाचार पंचमहायज्ञ है न कि मूर्तिपूजा और प्रतिमापूजन के कारण से लोगों ने बलिवैश्वादिक पंचयज्ञ छोड़ दिये हैं, जब उसमे अश्रद्धा होगी तब वह काम करने लगेंगे और जब वैदिक कर्म करने लगोगे तब तुम्हारा बड़ा मान होगा।

हमने कहा कि वैदिककर्म तो अब कोई कर नहीं सकेगा और मूर्तिपूजा पर अश्रद्धा हो जावेगी तो इससे लोक भ्रष्ट हो जावेंगे। (लेखराम पृष्ठ १२७, १२८)

जब श्री स्वामी जी महाराज फर्रुखाबाद में धर्म-प्रचार तथा पाखंड का खंडन कर रहे थे तो वहां के पंडितों में हलचल मच गई और उन्होंने जिला मेरठ के रहने वाले पंडित श्रीगोपाल जी को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया। इस शास्त्रार्थ में पीताम्बरदास जी मध्यस्थ थे और उनके अतिरिक्त दस पांच पंडित और भी थे। विश्रान्त घाट पर जहाँ स्वामी जी उतरे थे सब लोग एकत्रित हुए और पंडित श्रीगोपाल जी भी गये। उस समय श्रीगोपाल जी तथा स्वामी जी के मध्य निम्नलिखित बातचीत हुई—

पंडित जी बोले कि "भो स्वामिन् मंया रात्रौ विचारः कृतः" हे स्वामी! मैंने रात्रि में विचार किया है। आप मूर्तिपूजा का क्यों और कैसे खंडन करते हैं। यह मूर्तिपूजा तो सर्वथा लिखी है।

स्वामी जी—कुत्र लिखितमस्ति तदुच्यताम्" अर्थात् कहां लिखी है वह कहो और यह संस्कृत अशुद्ध है।

पंडित जी ने संस्कृत की अशुद्धि तो स्वीकार न की परन्तु मूर्तिपूजा के प्रमाण में मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक १७२ पढ़ा—

"देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च"

स्वामी जी—"अस्यार्थः क्रियताम्" अर्थात् इसका अर्थ करो।

पंडित जी—देवता का पूजन करे, सायं-प्रातः हवन करे और पूजन चूंकि प्रतिमा का ही हो सकता है और का नहीं इसलिये इससे मूर्तिपूजन सिद्ध है।

स्वामी जी—व्युत्पत्ति द्वारा इसका अर्थ करो। अर्च पूजायाम् अर्थात् अर्चा पूजा और पूजा सत्कार को कहते हैं। यहां अग्निहोत्र और विद्वानों के

सत्कार का अभिप्राय है, मूर्तिपूजा का नहीं। इस पर कुछ समय तक शास्त्रार्थ चलता रहा। श्री गोपाल जो निश्चय करके गये थे कि स्वामी जी को परास्त करेंगे वह बात न हुई और न मूर्तिपूजन का प्रतिपादन हुआ। इस पर स्वामी जी की विद्वत्ता की ख्याति और भी नगर में फैल गई और इसका कारण भी श्रीगोपाल हुए क्योंकि उसने उस समय यद्यपि अपनी भूल न मानी परन्तु दूसरे दिन पंडितों से पूछता फिरता था कि पूजा शब्द कहीं नपुंसक भी होता है या नहीं क्योंकि मैंने वहां भूल से पूजा नपुंसक लिंग बोल दिया है। पंडितों ने कहा कि नहीं, वह तो स्त्रीलिंग होता है।

इस अवसर पर श्रीगोपाल ने अपनी अपकीर्ति देखकर अपनी सफलता का यह एक उपाय सोचा कि काशी जाकर स्वामी जी के विरुद्ध मूर्तिपूजा के पक्ष में व्यवस्थापत्र लाऊं और उनको शास्त्रार्थ में इस बहाने से हराने का यत्न करूँ। यह निश्चय कर वह बनारस गये। पं० शालिग्राम जी शास्त्री मुख्याध्यापक गवर्नमेण्ट कालिज अजमेर वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी ने फर्रुखाबाद हमारे नगर में आकर मूर्तिपूजा का खंडन आरम्भ किया तब पंडित श्रीगोपाल जी बनारस में हमारे पास आये कि आप फर्रुखाबाद नगर के रहने वाले हैं। आजकल एक स्वामी-दयानन्द नामक वहाँ आये हैं और मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं, कृपा करके हमें व्यवस्था ले दीजिये। हमने उनके लिये प्रमाण लिखने का निश्चय किया परन्तु हमारे गुरु पंडित राजाराम शास्त्री ने कहा कि तुम क्यों परिश्रम करते हो। पहले भी एक बार दक्षिण में मूर्तिखंडन की चर्चा हुई थी उस समय हमने काशी के पंडितों के हस्ताक्षर से एक व्यवस्था लिखी थी उसकी प्रतिलिपि भेज दो। मैंने उसकी प्रतिलिपि करके काशी के पंडितों के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् उनको दे दी। श्रीगोपाल जी के कुछ रुपये भी हस्ताक्षर कराने में पंडितों की भेंट पूजा में व्यय हुए थे। हमने पहली बार श्रीगोपाल के मुख से ही स्वामी जी का नाम सुना था।

(लेखराम १२१, ५७५)

मूर्तिपूजा

[illegible] शास्त्रार्थ — १९ जून, १८६९

जेठ सुदि दशमी, शनिवार, संवत् १९२६ तदनुसार १९ जून, सन् १८६९ रात्रि को आठ बजे के समय ला० प्रेमदास तथा देवीदास साहुकार, पंडित उमादत्त, पंडित पीताम्बरदास, पंडित रामसहाय शास्त्री, पंडित गौरीशंकर, पंडित ललिताप्रसाद, पंडित गणेश शुक्ल, पंडित चरनामल शुक्ल, पंडित माधवाचार्य्य, पंडित बृजकिशोर, ला० जगन्नाथ प्रसाद, पंडित दिनेशराम,

पंडित विहारीदत्त सनाढ्य, पंडित गंगादत्त पुरोहित, पंडित हलधर ओझा को साथ लेकर नगर के बाहर गंगातट पर स्वामी जी के निवास-स्थान पर गये। लाला जगन्नाथ प्रसाद रईस फर्रुखाबाद ने आगे बढ़कर स्वामी जी को सूचना दी (उस समय स्वामी जी पूर्वाभिमुख बैठे हुए खर्बूजा खा रहे थे) कि महाराज हलधर आया है। स्वामी जी ने उनकी ओर से दृष्टि नीचे कर ली और खर्बूजा छोड़ दिया और फिर सिर उठाकर कहा कि आने दो। उक्त लाला साहब नीचे आकर उनको ले गए। हलधर ने जाकर प्रणाम किया। स्वामी जी ने उत्तर में कहा अरे हलधर आनन्द है?

"अरे हलधर आनन्दो जातः?"

उसने कहा महाराज आनन्द है।

यह पहले निश्चय हो गया कि शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा पर हो परन्तु मूर्तिपूजा पर आरम्भ होते ही बात सुरापान पर जा पड़ी क्योंकि यह हलधर तांत्रिक पंडित था जो मांस-मद्य खाता-पीता था और उसे उचित समझता था। मैथिल ब्राह्मण प्रायः तांत्रिक होते हैं और माँस-मद्य खाते-पीते हैं। हलधर ने प्रमाण दिया—

"सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्।"

अर्थात्—सौत्रामणि यज्ञ में सुरा पीनी चाहिये। स्वामी जी ने कहा कि सुरा शब्द से अच्छे फल की रसरूप औषधि का वर्णन है, मद्य का नहीं। मद्य अर्थ करने वालों का अच्छी तरह खंडन किया और कहा कि इसका अर्थ यह है कि सौत्रामणि यज्ञ में सोमरस अर्थात् सोमवल्ली का रस पीवे।

फिर हलधर ने स्वामी जी से संन्यासी के लक्षण पूछे। स्वामी जी ने सब लक्षण बतला दिये। तत्पश्चात् स्वामी जी ने हलधर से पूछा कि आप ब्राह्मण के लक्षण कहें। परन्तु वह उससे न बन सके और संस्कृत में गड़बड़ करने लगा। तब स्वामी जी ने कहा कि हलधर "भाषायां वद, भाषायां वद" अर्थात् भाषा में बात कर, भाषा में बात कर। इस पर वह बहुत घबरा गया और प्रकरण छोड़कर दूसरी ओर जाने लगा। तब स्वामी जी ने कहा कि हे हलधर! प्रकरण छोड़कर मत जाओ, प्रकरण पर रहो।

"भो हलधर प्रकरणं विहाय मा गच्छ।" हलधर ने इसका उत्तर दिया—

"अहं तु न प्रकरणं विहाय गच्छामि परन्तु श्रीमतां पुनः पुनः प्रकरण-मभिनयते, प्रकरणशब्दस्य कथं सिद्धिः"?

अर्थात् मैं तो प्रकरण छोड़कर नहीं जाता परन्तु आप बार-बार प्रकरण शब्द कहते हैं। बतलाइये प्रकरण शब्द किस प्रकार सिद्ध होता है ?

स्वामी जी—

"प्रपूर्वात् कृधातोर्ल्युट् प्रत्यये कृते सति प्रकरणशब्दस्य सिद्धिर्भवति" अर्थात् "कृ" धातु से "ल्युट्" प्रत्यय करने से प्रकरण शब्द सिद्ध होता है ।

हलधर—

"कृ धातुः समर्थो भवति किं वाऽसमर्थो भवति" अर्थात् 'कृ' धातु समर्थ होती है या असमर्थ ?

स्वामी जी—

"समर्थो भवति। समर्थः पदविधिः" अर्थात् 'कृ' धातु समर्थ होती है और इस सूत्र में समर्थ-पदविधि है जितने पद प्रसिद्ध होते हैं।

हलधर—यह तो कहिये कि समर्थ किस को कहते हैं और असमर्थ किस को कहते हैं ?

स्वामी जी—'सापेक्षोऽसमर्थो भवति' अर्थात् अपेक्षा करने वाला असमर्थ होता है। यह महाभाष्य का वाक्य है।

हलधर—यह वाक्य महाभाष्य में नहीं लिखा है—यह तो केवल आपकी संरचना है।

स्वामी जी ब्रजकिशोर पंडित से बोले कि दूसरे अध्याय का पहला अंक महाभाष्य का निकालिये। जब निकाला और देखा गया तो वही बात निकली जो स्वामी जी कहते थे।

अन्त में निरुत्तर होकर हलधर ओझा ने कहा कि महाभाष्यकार भी पंडित है और मैं भी पंडित हूँ। मैं क्या उससे कम हूँ।

स्वामी जी ने कहा कि तुम तो उसके बाल के समान भी नहीं हो। यदि हो तो कहो कि कलम संज्ञा किस की है ?

हलधर इसका कुछ उत्तर न दे सके। जब हलधर से कुछ उत्तर न बन सका तब स्वामी जी ने कहा कि महाभाष्य में "अकथितं च" इस सूत्र को देख लो कि कलम संज्ञा कर्म की है। इस पर सब लोग जान गये कि हलधर ओझा की कितनी विद्या है। इसी प्रकार शास्त्रार्थ व्याकरण पर होते-होते एक बजे रात का समय हो गया। अन्त में यह निश्चय पाया कि "समर्थः पदविधिः"—यह सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो हलधर जी की हार हो गई और यदि एक

स्थान पर लगे तो स्वामी जी की। यह निश्चय होने से सब लोग हलधर सहित चले आये।

ला० जगन्नाथप्रसाद तथा पंडित मुन्नीलाल जी ने कहा कि हम और सब पंडित लोग एक साथ ही चले जाते थे। मार्ग में सब पंडितों ने कहा कि स्वामी जी ने बड़ा हठ किया क्योंकि यह केवल सूत्र में लगता है, सर्वत्र नहीं लगता। चूंकि हम स्वामी जी के हितचिन्तक थे इसलिये प्रातःकाल हम दोनों स्वामी जी के पास गये। वह एकादशी का दिन था। हमने स्वामी जी से अलग जाकर कहा कि महाराज ! अब यहां तक ही रहने दो। उन्होंने कहा कि क्यों ? हमने कहा कि रात को सब पंडित कहते थे कि "समर्थः पदविधिः" यह सूत्र केवल सूत्र में ही लगता है, सर्वत्र नहीं। अभी न हमारी हार है और न उनकी। यदि बात बनी रहे तो अच्छा है। तब स्वामी जी ने क्रोध करके कहा कि गोवध का पाप तुझे है यदि उसे न लावे और गोवध का पाप उसे है यदि वह न आवे। तब हमारा मुंह बिगड़ गया और हमने जान लिया कि स्वामी जी अपनी खोज तथा सत्य पर बड़े दृढ़ हैं अतः हम चले आये।

उस दूसरी रात के लिये दरियों का प्रबंध हो गया था परन्तु स्वामी जी चटाई पर ही बैठे रहे। आठ बजे रात के सब एकत्रित हुए—रात चांदनी थी। कुशल क्षेम पूछकर बैठ गये। सबके सामने स्वामी जी ने कहा कि भाई कल हमारा तुम्हारा किस बात पर शास्त्रार्थ था। क्या इसी बात पर था या नहीं कि यदि केवल सूत्र पर लगे तो हमारी पराजय और यदि सर्वत्र लगे तो तेरी पराजय। वह मौन रहा परन्तु पीताम्बरदास ने कहा कि हां महाराज ! कल यही बात निश्चित हुई थी जिसे सब पण्डितों ने स्वीकार किया। इस रात शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले यह ज्ञात हुआ कि कुछ लोगों का विचार कोलाहल करने का है इसलिये सबको सुनाकर कह दिया गया कि जिस किसी को स्वामी जी से बात करने की इच्छा हो वह अकेला-अकेला करे। यदि कोई बीच में बोलेगा तो उठा दिया जायेगा। पंडितों के अतिरिक्त जो और लोग थे उनको कहा गया कि आप लोग यहां से उठकर नीचे चबूतरे पर सुनें। इस पर गौरीशंकर कश्मीरी ब्राह्मण क्रोधित होकर अपने घर को चला गया और उसी दिन से स्वामी जी के विरुद्ध हो गया।

शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले स्वामी जी ने हलधर से कहा कि हलधर तू अभी नवीन पढ़कर आया है और गृहस्थी है। तू अब यदि समझ ले कि मेरी हार हो गई तो कुछ हानि नहीं परन्तु तुम्हारी हार होने में तेरी हानि है। हलधर ने इस बात की कुछ पर्वाह न की और उसी हठ पर अड़ा रहा। तब स्वामी जी ने

पं० ब्रजकिशोर को आवाज दी कि ब्रजकिशोर ! महाभाष्य लाओ। दीपक भी पास मगालिया। महाभाष्य खोलकर इस सूत्र को सबके सामने सर्वत्र लगा दिया। जिस पर हलधर बिल्कुल मौन हो गया। पंडित लोग और बातें करने लगे। स्वामी जी ने कहा कि नहीं जिस बात पर हमारा शास्त्रार्थ हुआ है पहले उसका निर्णय कर दो कि किसकी हार हुई। तब सब चुप हो गये। ला० जगन्नाथप्रसाद जी ने कहा कि जो बात हो वह सच-सच कह दो तब सबने स्वीकार किया कि कल यही ठहरी थी कि "समर्थः पदविधिः"—यह सूत्र सर्वत्र लगता है या एक स्थान पर। जो बात कल हलधर ने कही थी वह अशुद्ध सिद्ध हुई। इतना सुनकर हलधर निश्चेष्ट सा हो गया और दुःख से गिरने लगा। उसके साथियों ने उसे संभाल लिया। उस रात को पहली रात से बहुत अधिक मनुष्य थे। अंततः हलधर को पराजित होने के पश्चात् लोग उठा ले गये। शेष पण्डित भी चले गये। केवल पण्डित पीताम्बरदास, उमादत्त, रामसहाय शास्त्री, मुन्नीलाल तथा ला० जगन्नाथप्रसाद जी बैठे रहे। रात एकादशी की थी। कुछ पुण्योपार्जन के विचार से और कुछ सत्योपदेश के लिये वहाँ रात भर जागते रहे। आज भी एक बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा।

फिर उसी रात को स्वामी जी का पण्डित उमादत्त जी से मित्रतापूर्वक वार्तालाप हुआ। बीच में पण्डित रामसहाय जी बोलने लगे। स्वामी जी ने उन्हें कहा कि आप बूढ़े हैं, शास्त्रार्थ में अपमान हो जाता है, आप सुनते रहें जिस पर वह बुद्धिमानी से फिर मौन रहे। प्रातःकाल सब गंगास्नान करके अपने घर को चले गये और उनके चले जाने के पश्चात् बिना किसी को सूचना दिये स्वामी जी भी कानपुर की ओर चले गये। (लेखराम पृ० ५८३-५८६)

ईश्वरीय-ज्ञान

(मौलवी से कानपुर में प्रश्नोत्तर—सन् १८६९)

रायबहादुर दरगाही लाल वकील तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट कानपुर ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी कानपुर में हमारे घाट पर ठहरे हुए थे, तो एक मौलवी आये। स्वामी जी ने उससे कुरान के विषय में कहा कि कुरान तुम्हारा ईश्वरीय वचन नहीं हो सकता इसलिये कि उसकी बिस्मिल्लाह अशुद्ध है। मौलवी ने अर्थ किये। स्वामी जी ने कहा कि यदि ईश्वर ने बनाया है तो फिर वह किस ईश्वर के नाम से आरम्भ करता है? इस पर वह मौन होकर चले गये। (लेखराम पृष्ठ १३५-१३६)

मूर्त्तिपूजा

(पं० हलधर ओझा शास्त्री से कानपुर में शास्त्रार्थ—३१ जौलाई, १८६९)

कानपुर नगर में भैरव घाट के नीचे फर्श पर शास्त्रार्थ हुआ था। मुख्य-न्यायाधीश और डब्लू थेन साहब बहादुर ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट कानपुर तथा नगर कोतवाल आदि सब सम्मानित व्यक्ति वहां उपस्थित थे। उपस्थिति २०-२५ हजार मनुष्यों की थी। दो बजे से मनुष्य एकत्रित होने आरम्भ हुए। साढ़े चार बजे से शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। शास्त्रार्थ का विषय "मूर्ति-पूजन" था। स्वामी जी के सम्मुख लक्ष्मण शास्त्री भट्टूर वाले और हलधर ओझा दोनों उपस्थित थे। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ। मिस्टर थेन साहब बहादुर जो अच्छे संस्कृतज्ञ थे, मध्यस्थ नियत हुए। सूर्य्यास्त होने के पश्चात् शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

स्वामी जी नीचे भैरव घाट पर उतरे हुए थे। प्रथम सब लोगों ने यह चाहा कि वह घाट के ऊपर आकर शास्त्रार्थ करें और कोतवाल आदि अधिकारियों ने भी स्वामी जी से कहा कि आप ऊपर आ जायें। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैंने किसी को नहीं बुलाया, जिसका जी चाहे वह यहां आ जाये और जिसका जी चाहे वह न आवे। इस पर सब नीचे चले आये।

स्वर्गीय बाबू श्यामाचरण बंगाली मुख्य प्रधान, पंडित काशीनारायण न्यायाधीश (जो इस समय बनारस में रहते हैं) तथा सुलतान अहमद कोतवाल आदि सब सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे। अन्त में सबके सामने मिस्टर थेन साहब मध्यस्थ ने निर्णय दिया था कि स्वामी जी जीते हैं और उनकी विद्वत्ता की बहुत प्रशंसा की थी। पण्डित शिवसहाय जी ने वर्णन किया कि उस दिन मैं उपस्थित था। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। हलधर ओझा अपने साथ लक्ष्मण शास्त्री को भी लाया था। प्रथम प्रश्न हलधर ओझा ने यह किया कि आपने जो विज्ञापन दिया है जिसका विषय "अष्ट गप्प" और "अष्ट सत्य" है—उसमें व्याकरण की अशुद्धि है।

स्वामी जी—ये बातें पाठशाला के विद्यार्थियों की हैं। ऐसे शास्त्रार्थ सदा पाठशालाओं में हुआ करते हैं। आज वह विषय छेड़ो जिसके लिए हजारों मनुष्य एकत्रित हैं। व्याकरण के बारे में कल मेरे पास आना—मैं समझा दूंगा।

तब ओझा ने प्रश्न किया कि आप महाभारत को मानते हैं?

स्वामी जी ने कहा कि हम मानते हैं।

ओझा ने एक श्लोक भारत का पढ़ा जिसका अभिप्राय यह था कि

एक भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर और सामने रखकर धनुष-विद्या सीखी।

स्वामी—मैं तो यह कहता हूँ कि कहीं प्रतिमापूजा की आज्ञा बतलाओ इसमें तो आज्ञा नहीं पाई जाती है प्रत्युत लिखा है कि एक भील ने ऐसा किया जैसा कि सदा अज्ञानी लोग आज तक किया करते हैं। वह कोई ऋषि, मुनि न था, न उसको किसी ने ऐसी शिक्षा दी थी और यदि यह बात कहो कि उसको ऐसा करने से धनुष-विद्या आगई तो उसका कारण द्रोणाचार्य की मूर्ति न थी, प्रत्युत अभ्यास का परिणाम था जैसा कि अंग्रेज लोग चाँदमारी के द्वारा सीखते हैं परन्तु वे कोई मूर्त्ति नहीं धरते। फिर उस पर ओझा जी चुप रहे और दूसरा यह प्रश्न किया—

ओझा जी—वेद में प्रतिमा की आज्ञा नहीं है तो निषेध कहाँ है?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जैसे किसी स्वामी ने सेवक को आज्ञा दी कि तू पश्चिम को चला जा, इससे स्वयं ही तीन दिशाओं का निषेध हो गया। अब उसका यह पूछना कि उत्तर दक्षिण को न जाऊं व्यर्थ है। इसलिये जो वेद ने उचित समझा, कह दिया और नहीं लिखा वही निषेध है।

इसके पश्चात् थेन साहब को सन्देह हुआ कि ये स्वामी जी कुछ पढ़े हैं या केवल मुख से ही शास्त्रार्थ करते हैं। इसकी परीक्षा के लिये एक पत्रा जो हलधर लाये थे वह परीक्षार्थ स्वामी जी के सामने रख दिया। स्वामी जी ने पढ़कर सुना दिया। इस पर साहब बहादुर ने स्वामी जी से प्रश्न किया।

थेन साहब—आप किसको मानते हैं?

स्वामी जी—एक ईश्वर को।

तत्पश्चात् थेन साहब ने छड़ी और टोपी उठाई और कहा कि ठीक बात है, अच्छा प्रणाम। उनके उठते ही सब उठ खड़े हुए और कोलाहल मचाते हुए चले कि बोलो श्री गंगा जी की जय। यह सारा कार्य स्वर्गीय प्रागनारायण तिवारी का था और रुपया या आठ आने के पैसे भी ओझा जी के सिर से लुटाए और शोर मचाया कि ओझा जीते और स्वामी जी हारे और उनको गाड़ी में चढ़ाकर ले गये। (लेखराम पृष्ठ ५८६-५९६)

"कानपुर शास्त्रार्थ के विषय में मध्यस्थ मिस्टर थेन की सम्मति"

Gentlemen, At the time in question I dccided in favour of Daya Nand Saraswati Fakir, and I believe his arguments are in accordance with the Vedas I think he won thy day. If you wish tt I will give you my reasons for my decision in a few days.

Cawnpore

Yours obediently
(Sd.) W. Thaina

अनुवाद

सज्जनो, शास्त्रार्थ के समय मैं ने दयानन्द सरस्वती फकीर (साधु) के पक्ष में निर्णय दिया था और मैं विश्वास करता हूँ कि उनकी युक्तियां वेदों के अनुकूल थीं। मेरा विचार है कि उस दिन उनकी विजय हुई। यदि आप चाहेंगे तो मैं अपने इस निर्णय के कारण कुछ दिनों में दे दूंगा।

कानपुर

(हस्ताक्षर) डब्ल्यू० थेन

नवीन वेदान्त

(साधु मायाराम परमहंस, बनारस वासी से प्रश्नोत्तर—सन् १८६९)

"ब्रह्म और जीव की एकता पर प्रश्न"

साधु मायाराम जी परमहंस उदासी ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी का काशी में शास्त्रार्थ हुआ तब हम कलकत्ता में थे। हमने एक साधु के मुख से सुना था कि बनारस में दयानन्द के साथ विशुद्धानन्दादि ने बुद्धिपूर्वक शास्त्रार्थ नहीं किया प्रत्युत धूर्तता की जो बुरी बात है। एक वार हम एक ब्रह्मचारी के साथ आनन्दबाग में जहां दयानन्द जी उतरे हुए थे—विचरते हुए गये। हमारा विचार तो नहीं था परन्तु ब्रह्मचारी ले गया। उनके पास पहुँचकर ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया कि शारीरक पर शंकर और रामानुजादि लोगों के भाष्य हैं—एक द्वैत और दूसरा अद्वैत बताता है—हम किस को मानें।

स्वामी दयानन्द ने कहा कि दोनों का ठीक नहीं, प्रत्युत भेद अभेद दोनों हैं। ब्रह्म सर्वव्यापक है इसलिए अभेद है। ब्रह्म जीव नहीं इसलिए भेद है। हमने आक्षेप किया कि फिर शंकर मतवाले जो अभेद मानते हैं अर्थात् जीव-ब्रह्म की एकता, उनको क्या फल प्राप्त होगा ?

उत्तर दिया कि उनका निश्चय मिथ्या है, मिथ्या फल होगा।

हम कोई और प्रश्न करना चाहते थे परन्तु ब्रह्मचारी ने चलने का निश्चय किया। स्वामी जी संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। (लेखराम पृ० १५३)

मूर्त्ति पूजा

काशी शास्त्रार्थ

कार्तिक सुदि १२ संवत् १९२६

काशी शास्त्रार्थ (वैदिक यन्त्रालय काशी में मुद्रित संवत् १९३७ के अनुसार)

भूमिका

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६, मि० कार्तिक सुदि १२, मंगलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वती जी" का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं।

इस संवाद में स्वामी जी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजादिखण्डन-विषय और काशीवासी पण्ड़ित लोगों का मण्डन का विषय था। उनको वेद-प्रमाण से मण्डन करना उचित था सो कुछ भी न कर सके। क्योंकि जो कोई भी पाषाणादि मूर्तिपूजादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं, इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते? क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है। ऐसे हुए पश्चात् भी जिस-जिस ग्रन्थान्तर में से जो-जो पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके। पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका। पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषणवाची इस में स्वामी जी का पक्ष विशेषण-वाची और काशीस्थ पंडितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था, इसमें बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामी जी ने विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके। सो आप लोग देखिए कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक-ठीक विदित होता है?

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सबके सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामी जी ने उसको विशेषणवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशी-निवासी पंडितों से

कुछ भी न बन पड़ा। एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सम्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामी जी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें? क्या स्वामी जी का पांच मिनिट दो पत्रों के देखने में लगाके प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी? और क्या सबसे बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों के सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उनको रोकने वाला न हुआ? और क्या एकदम उठके चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था?

यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामी जी की झूठी निन्दा के लिए काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उनकी बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामी जी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं। और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी बार काशी जी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्त्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिये पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो। इस पर भी कुछ नहीं करते। यह भी कितने निश्चय करने की बात है। परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पंडित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सम्मुख होके अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामी जी के सामने न होते?

इससे यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिए कि जो इस विषय में स्वामी जी की बात है वही ठीक है। और देखो! स्वामी जी की यह बात संवत् १९२६ के विज्ञापन से भी कि जिसमें सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे; सत्य ठहरती है।

उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था। उस पर स्वामी जी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उसके उत्तर में पंडित भीमसेन शर्मा ने छपवाकर कि जिसमें स्वामीविशुद्धानन्द-

सरस्वती जी और बालशास्त्री जी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी, प्रसिद्ध किया था, उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ। क्या अब भी किसी को शंका रह सकती है जो-जो स्वामी जी कहते हैं वह सत्य है वा नहीं? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिए कि स्वामी जी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं।

और जहां छान्दोग्य उपनिषद् आदि को स्वामी जी ने वेद नाम से कहा है वहां वहां उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामी जी का मत नहीं। स्वामी जी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त, सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि, मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं। मंत्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती क्योंकि वे तो स्वतःप्रमाण हैं। (प्रबन्धकर्त्ता—वै० य० काशी)

अथ काशीस्थ शास्त्रार्थः

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु। एको दिगम्बरस्सत्यशास्त्रार्थविद्‌यानन्दसरस्वती स्वामी गंगातटे विहरति। स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति—"वेदेषु पाषाणादिमूर्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपतवैष्णवादिसम्प्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव; तस्मादेतत् सव मिथ्यैवास्ति; नाचरणीयं कदाचित्। कुतः? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्ति।"

एवं हरद्वारमारभ्य गङ्गातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिद् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन् सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः। बहुभिः पण्डितैर्वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः। परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्तिपूजनादिविधानं न लब्धम्।

प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, अतः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति।

पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्‌विंशतितमे संवत्सरे (१९२६) मङ्गलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः, तत्रागतः।

तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्—वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा ?

तदा महाराजेनोक्तम्—वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्-विचारस्तु न भवति ।

अस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि ।

तदा पण्डितरघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति ।

तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः । तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तम्—युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति ?

तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्य-स्वीकारोऽस्तीति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादिमूर्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम् । नास्ति चेद्वद नास्तीति ।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत् ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योऽस्ति तस्मात् स एवादौ कर्त्तव्यः । कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः । मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेद-विरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति ।

तदा तारचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति ।

स्वामिनोक्तम्—'यद् वै किंचन मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजताया' इति सामवेदे :०: ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्च आनुमानमित्यस्य व्यास-सूत्रस्य किं मूलमस्तीति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्य प्रकरणस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति ।

पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति ।

:०: इद पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम्। कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं, नास्त्यस्य प्रामाण्यं, कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"चोदनालक्षणार्थो धर्मः" इति जैमिनि-सूत्रमिति। ❀

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का, चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत्।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम्।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—एकमेव लक्षणं धर्मस्येति।

तदा स्वामिनोक्तम्—किं च तदिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम्।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

इति मनुस्मृतेः श्लोकोऽस्ति :o:।

❀ इदन्तु सूत्रमस्ति, नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिः, सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कुतो न पराजय इति वेद्यम्।

:o: अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं जातमिति बोध्यम्।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति।

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम्।

तदा बहुभिर्युगपत् पृष्टम्—प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति।

तदा तैरुक्तम्—क्वास्तीति?

तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति।

तदा तैरुक्तम्—किं च तद्वचनमिति।

तदा स्वामिनोक्तम्—देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसंतीत्यादीनि।

तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे* वर्त्तते भवान् कथं खण्डनं करोति?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति। प्रतिमाशब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति।

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं मंत्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थं इति?

तदा स्वामिनोक्तम्—अथातोद्भुतशांतिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातारमिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमंत्रा लिखिताः। एतेषां मध्यात् प्रतिमन्त्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्च पञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम्। अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशांतिर्विहिता। यस्मिन्मंत्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मंत्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव तद्यथा—"स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति" प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशांतिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शांतिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता। ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता। ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम्। ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टिविघ्नोपशान्तिर्भवतीति।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—इन्द्रियाणि दर्शयितॄणीति।

तदा स्वामिनोक्तम्—इन्द्रियाणि तु द्रष्टॄणि भवन्ति न तु दर्शयितॄणि, परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोऽस्तीति?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम्।

---

* अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम्।

तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तम्—अन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किम् ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मन्त्रस्यार्थं वदेति ।

तदा शिवसहायेन मौनं कृतम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाताः ? किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—ईश्वरस्त्वेक एव परन्तु वेदा कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः ? किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मनो ब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु+ दृश्यन्ते तथा पाषाणादिब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते । पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति ?

तदा माधवाचार्येणोक्तम्—'उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च' इति मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति ।

तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्--पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शंकास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ।

+ इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम् । नेदं स्वामिनो मतमिति बोध्यम् ।

ततो माधवाचार्य्येणोक्तम्—पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति। कुतः ? पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानि" इत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति।

तदा स्वामिनोक्तम्—सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति।

यदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति।

तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य द्वे पत्रे निस्सारिते। अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति।

तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति।

तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति "ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति"

तदा स्वामिनोक्तम्— पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्—ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्— इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्— अयं नियमोऽस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति ?

'अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो न' इति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि

+ इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यमेते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्याभवतामिति च।

गीतायां कथम्भवन्ति ? व्याकरणेऽपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्— इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा—'इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' इत्युक्तम् ।

तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्–यदि वेदेष्वयम्पाठो × न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद् भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदानीं व्याकरणे कल्मसञ्ज्ञा क्वापि लिखिता न वेति ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृतः इति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ?

बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति ।

तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य + निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते । अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते ।

तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् । तत्रेदं वचनं वर्तते—"दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः, इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति ।"

अस्यायमर्थः—पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्यैव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या । कुतः ? एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं न चोपनिषदाम् । तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् । पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्तादयो ग्रन्थाश्चेति । यदि

× इदमपि पण्डितानां मतं नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।

+ एते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति ।

ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति, क्वाप्येवं वेदेषु :०: पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता।

तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोऽभूत्। ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः। एवं च तेषां कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति।

अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति।

दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति। तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निःसृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत्? पाषाणादिमूर्तिपूजनरचनादि-विधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तम्।

येषां वेदविरुद्धेषु च पाषाणादिमूर्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदाया-दिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तथ्यमेवेति॥

भाषार्थ

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गंगा के तीर विचरते रहते हैं जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं, उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है। सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि "पाषाणादि मूर्त्तिपूजन, शैव, शाक्त, गाणपत और वैष्णव आदि संप्रदायों और रुद्राक्ष, तुलसी माला, त्रिपुण्ड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है। इससे ये सब मिथ्या ही हैं। कदापि इनका आचरण न करना चाहिये। क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है।"

इस हेतु से उक्त स्वामी जी हरिद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए। उनके आने की धूम मची। बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया। परन्तु पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है। इससे काशीराज महाराज ने बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द

:०: इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति।

सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापना हो सके करना चाहिए।

निदान कार्तिक सुदि १२, सं० १९२६, मंगलवार को महाराज काशी-नरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आये तब दयानन्द स्वामी जी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

महाराज ने कहा कि वेद सम्पूर्ण पंडितों को कंठस्थ हैं। पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तब दयानन्द सरस्वती जी ने कहा कि पुस्तकों के बिना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक-ठीक नहीं हो सकता। भला पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पंडितों ने कहा कि तुम मूर्त्तिपूजा का खंडन करते हो। हम लोग उसका मंडन करेंगे।

पुनः स्वामी जी ने कहा कि जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पंडित मुझ से संवाद करे।

पंडित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि स्वामी जी से एक-एक पंडित विचार करे।

पुनः सब से पहले ताराचरण नैयायिक स्वामी जी से विचार हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए।

स्वामी जी ने उन से पूछा कि आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं ?

उन्होंने उत्तर दिया कि जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सबको वेदों का प्रमाण ही है।*

इस पर स्वामी जी ने कहा कि कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखाइए और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है।

पंडित ताराचरण ने कहा कि वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मानता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि औरों का विचार पीछे होगा। वेदों का विचार मुख्य है। इस निमित्त से इस का विचार पहले ही करना चाहिए। क्योंकि

* इससे यह समझना कि स्वामी जी भी वर्णाश्रमस्थ हैं वेदों को मानते हैं।

वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है। और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इस से इनका भी प्रमाण है। क्योंकि जो-जो वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता।

पंडित ताराचरण ने कहा कि मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि 'जो जो मनु जी ने कहा है सो-सो औषधों का भी औषध है' ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है।:०:

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि 'रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमानप्रतिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं' व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है। इस पर विचार करना न चाहिए।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो।

इस पर स्वामी जी ने यह समझकर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी; कहा जो कदाचित् किसी को कंठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो कंठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि आप को सब कण्ठाग्र है ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि हां हमको कंठस्थ है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह आप का संस्कृत है। इसका क्या प्रमाण है, श्रुति वा स्मृति कहिये।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है। यह जैमिनि का सूत्र है।

स्वामी जी ने कहा कि यह सूत्र है। यहां श्रुति वा स्मृति को कंठ से क्यों

:०: यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है परन्तु स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं।

नहीं कहते ? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिए जहाँ प्रेरणा होती है।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा तब स्वामी जी ने कहा कि अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वह कैसा है ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा।

तब स्वामी जी ने कहा धर्म्म के तो दश लक्षण हैं। आप एक ही क्यों कहते हैं !

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन लक्षण हैं ?

इस पर स्वामी जी ने मनुस्मृति का वचन कहा कि—धैर्य्य १, क्षमा २, दम ३, चोरी का त्याग ४, शौच ५, इन्द्रियों का निग्रह ६, बुद्धि ७, विद्या का बढ़ाना ८, सत्य ९, और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०। ये दश धर्म के लक्षण हैं। फिर आप कैसे एक लक्षण कहते हैं ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि हाँ हमने सब धर्मशास्त्र देखा है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तब बालशास्त्री जी ने कुछ भी उत्तर न दिया।

फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है।

फिर उन लोगों ने कहा कि कहाँ पर है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है।

फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौन सा वचन है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान होते और प्रतिमा हँसती है इत्यादि :०:।"

फिर उन लोगों ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खंडन करते हैं ?

:०: यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहाँ भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्त्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है। इसलिए प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिए इसका क्या अर्थ है ?

तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह अर्थ है—अब अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिए, इन्द्र [त्रातार-मिन्द्र] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं। इनमें से प्रति मन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहिए। इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच-पांच आहुति करनी चाहियें। ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है। इस क्रम करके अद्भुत शान्ति का विधान किया है। जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है। सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है। इस पर सब चुप रहे।

फिर बालशास्त्री ने कहा कि जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है उस-उस की शान्ति करने से अद्भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं। परन्तु 'स प्राची दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र' इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ? तब बालशास्त्री ने कुछ न कहा।

फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ?

तब शिवसहाय जी चुप हो रहे।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा किस ईश्वर से? क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से? अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से? इत्यादि।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुत से हैं?

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या सम्बन्ध है? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है? इत्यादि।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिए।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि जैसे "मनो ब्रह्मे त्युपासीत आदित्यं ब्रह्मे-त्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों :०: में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि ब्रह्मे-त्युपासीत" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है?

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टा-पूर्त्ते स ँ सृजेथामयञ्च" इति। इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग और आराम का ग्रहण है?

माधवाचार्य्य ने कहा कि इससे पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्त्ति का वाचक है। इससे कदा-

---

:०: यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते।

चित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शंका हो तो इस मन्त्र का निरुक्त ब्राह्मण देखिए ।

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है परन्तु पुराण से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता। क्योंकि पुराणशब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मन्त्र में कि "एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति" यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा—हां प्रमाण है।

फिर विशुद्धानन्द जी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सबका प्रमाण आया।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहाँ पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पुस्तक लाइए तब इसका विचार हो ।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे :०: निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

स्वामी जी ने कहा कि कैसा वचन है पढ़िये।

तब माधवाचार्य्य ने यह पढ़ा 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति'।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं।

तब बालशास्त्री जी आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शंका भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है।

:०: यह भी उन्हीं का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहाँ इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे'' इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है। इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है—सुनिये "इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः" इत्यादि में कहा है।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद :०: में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो। तब सब चुप हो रहे।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा करी है वा नहीं ?

तब बालशास्त्री जी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है। यदि जानते हो तो इसके उदाहरण पूर्वक समाधान कहो ?

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा। माधवाचार्य ने दो पत्रे वेदों के+ निकालकर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है। यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?

स्वामी जी ने कहा कि पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने

:०: यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामी जी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते।

+ ये पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं।

पाठ न किया तब विशुद्धानन्द जी ने पत्रे उठा के स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो।

स्वामी जी ने कहा कि आप ही इसका पाठ कीजिए।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिये।

इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे। इसमें अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही स्वामी जी यह उत्तर कहा चाहते थे कि—

"पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है। इत्यादि से यहाँ ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है, परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा। इसलिए यहाँ उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं। पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है। इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहाँ ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं सो तो वेद में ❀ कहीं ऐसा पाठ नहीं है। इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता।" कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हमको विलम्ब होता है हम जाते हैं।

तब सबके सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये। इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय :०: हुआ। परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ? ॥ इति ॥

(लेखराम पृ० ५७०, दिग्विजयार्क पृ० १५)

❀ यह पण्डितों के मतानुसार कहा है, यह स्वामी जी का मत नहीं है।

:०: क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामी जी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी-दयानन्द सरस्वती जी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं। क्योंकि स्वामी जी का तो वेदोक्त सत्य-मत है उसका विजय क्योंकर न होवे? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्त जो पाषाणादि मूर्त्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है? यह निश्चय है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है॥

धर्म और मूर्त्तिपूजा

(मिर्जापुर के रामरतन लड्ढा से शास्त्रार्थ—माघ, सं० १९२६ वि०)

इतने में रामरतन लड्ढा ने कहा कि महाराज यह हमारे मिर्जापुर के पंडित हैं, आप इनके सामने कुछ कहें। स्वामी जी ने उससे पूछा कि तुम किस मन्दिर के शिष्य हो? उसने कहा कि हम नाथ जी के शिष्य हैं। स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारा आचार्य वेश्या-पुत्र और तुम उसके शिष्य हुए, यह तुमको अनधिकार है। स्वामी जी ने हम से पूछा कि इनको अधिकार है या नहीं? हमने कहा कि अधिकार नहीं। फिर स्वामी जी ने हमसे पूछा धर्म क्या है और उसका स्वरूप क्या है? हमने कहा कि आपके इस कथन में दोष है। बोले इसमें क्या दोष है? हमने कहा धर्म का रूप नहीं है, उसका स्वरूप पूछना अनुचित है। तब स्वामी जी ने मनुस्मृति और महाभारत से धर्म का स्वरूप बतलाना आरम्भ किया। हमने कहा कि जो वेद का प्रतिपादित है वही धर्म है।

तथाकथित प्रतिष्ठा आदि के मंत्रों में प्रतिष्ठा न निकली न आवाहन। तब स्वामी जी ने पूछा कि वेद में प्रतिमापूजन है या नहीं? हमने उत्तर दिया कि है। उस पर स्वामी जी ने कहा कि कहाँ? हमने कहा कि प्रतिष्ठा और आवाहन वेदमंत्रों से होता है क्या वह प्रमाण नहीं। तब स्वामी जी ने कहा कि वह प्रतिष्ठा और आवाहन वेदमंत्र कहो। तब हमने मन्त्र कहा। स्वामी जी ने कहा कि इसका अर्थ कहो। जब अर्थ किया तो उनमें प्रतिष्ठा और आवाहन का कुछ प्रयोजन न आया। फिर हमने पूजन और पुष्प चढ़ाने और धूप दीप नैवेद्य आदि के मन्त्र उनके आगे पढ़ें। उनका अर्थ भी स्वामी जी ने सुनाया कि इनका अर्थ तो यह है; फिर तुम उनसे कैसे नैवेद्य आदि चढ़ाते हो। और नवग्रह पूजा के जो मन्त्र हैं उनका भी अर्थ देखिये। उनका अर्थ भी करके सुनाया। उससे भी सूर्य और बृहस्पति के अतिरिक्त किसी ग्रह का सम्बन्ध न निकला।

(लेखराम पृष्ठ १९५)

गीता के श्लोक का अर्थ

(एक सज्जन से मिरजापुर में प्रश्नोत्तर—अप्रैल, १८७०)

एक दिन एक सज्जन जो गीता का बड़ा प्रेमी था, स्वामी जी के पास आकर बोला कि महाराज मैंने गीता की अनेक टीकाएँ देखी हैं परन्तु इस श्लोकार्ध का अर्थ समझ में नहीं आया। आप अनुग्रह करके इसका अर्थ मुझे समझा दें।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

स्वामी जी ने इसका अर्थ किया कि "धर्म्मान्" शब्द को यहाँ "अधर्म्मान्" समझना चाहिये। "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" व्याकरण के नियम के अनुसार "सर्व" में जो वकार में अकार है वह "अधर्म्मान्" के अकार में तद्रूप हो गया, अर्थात् वह वकार का अकार उसमें मिल गया, इस प्रकार यद्यपि "अधर्म्मान्" शब्द ने "धर्म्मान्" का रूप ग्रहण कर लिया, परन्तु वास्तव में "अधर्म्मान्" ही रहा। यह अर्थ सुनकर वह मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ और स्वामी जी से उसने इस अर्थ की पुष्टि में प्रमाण मांगा तो उन्होंने वेद के दो तीन मन्त्रों का प्रमाण देकर उसका संतोष कर दिया।

(देवेन्द्रनाथ १। १९१, लेखराम १९८)

मूर्त्तिपूजा

(पं० रुद्रदत्त और पं० चन्द्रदत्त पौराणिक से आरा में शास्त्रार्थ—अगस्त, १८७२)

पं० रुद्रदत्त और पं० चन्द्रदत्त पौराणिक से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ था। पं० रुद्रदत्त ने मूर्तिपूजा के पक्ष में पुराणों के प्रमाण प्रस्तुत किये। स्वामी जी ने उन्हें यह कहकर आग्रह किया कि हम वेद, पाणिनि और मनुस्मृति (प्रक्षिप्त भाग को छोड़कर) के सिवाय अन्य ग्रन्थों का प्रमाण नहीं मानते।

तत्पश्चात् यह प्रसंग उठा कि पुराण किसने बनाये। स्वामी जी ने कहा कि वञ्चक लोगों के रचे हुए है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में प्रायः सारे ही राजा मर गये थे, राजगृह की स्त्रियां उत्पथगामिनी हो गईं, ब्राह्मण असहाय हो गये, अनेक प्रकार के वञ्चक लोग उत्पन्न हो गये, उन्होंने पुराणादि की रचना कर डाली, उन्होंने यह भी कहा कि महाभारत का युद्ध भारतवर्ष की अनेक प्रकार की अवनतियों का मूल हुआ है। तन्त्र-ग्रन्थों के विषय में स्वामी जी ने अनेक बातें कहीं। जिन्हें सुनकर पं० रुद्रदत्त चिढ़ गये और चटक कर बोले कि ऐसी बातें अश्राव्य हैं इस स्थान से चले जाना ही उचित है। स्वामी जी ने कहा कि आप तो कुछ विचार करते नहीं, इसी से किसी परिणाम पर नहीं पहुँचते। वेदान्त का प्रसंग उठने पर स्वामी जी ने प्रमाण-चैतन्य, प्रमेय-चैतन्य और प्रमातृ-चैतन्य के विषय में प्रश्न किये जिनके उत्तर यथामति पं० रुद्रदत्त ने दिये।

स्वामी जी दीप्त प्रभाकर के समान थे। उनके गम्भीर विचार और अतिमानुषिक प्रतिभा के सामने पं० रुद्रदत्त प्रभृति कितनी देर ठहर सकते थे।

वह अपना श्रेय सभा-स्थल से शीघ्रादपि शीघ्र चले जाने में ही समझते थे। वह केवल वहां से चले जाने का बहाना ढूंढते थे। अतः जब स्वामी जी ने तन्त्र ग्रन्थों की तीव्र आलोचना की तो उन्होंने यह प्रकट किया कि उक्त आलोचना असह्य है और सभास्थल से उठकर चले गये। (देवेन्द्रनाथ १। २१२)

जातिपांति और ईश्वर-विषयक

(पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती कलकत्ता निवासी की शंकाओं का समाधान)

सन् १८७३ का प्रारम्भ

श्री चक्रवर्ती के प्रश्न तथा उनके उत्तर का विवरण

प्रश्न—जातिभेद है या नहीं ?

उत्तर—मनुष्य एक जाति, पशु एक जाति, पक्षी एक जाति, जातिभेद इसी प्रकार है।

उनके इस उत्तर को सुनकर हम मौन हो गये तब स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारा प्रश्न कदाचित् यह है कि वर्णभेद है या नहीं ? हमने कहा यही हमारा अभिप्राय है। स्वामी जी ने कहा—निस्सन्देह वर्णभेद है। जो वेदज्ञ और पंडित है, वह ब्राह्मण; जो उससे न्यून और ज्ञानवान् हैं वे क्षत्रिय; जो व्यापार करते हैं वे वैश्य और जो मूर्ख हैं वे शूद्र हैं। और जो महामूर्ख वह अतिशूद्र हैं। तब हम बहुत प्रसन्न हुए और इसी से स्वामी जी पर हमारी भक्ति आई।

दूसरा प्रश्न—हमारा यह था कि ईश्वर मूर्तिवाला साकार है या निराकार ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वर्त्तमान संस्कृत पुस्तकों में तो बहुत से ईश्वर बताये हैं। तुम कौन-सा ईश्वर चाहते हो, सच्चिदानन्द आदि लक्षणवाला चाहते हो तो वह ईश्वर एक है और निराकार है।

हमने पूछा कि वह जो संसार का स्वामी है उसका आकार है या नहीं ? स्वामी जी ने उत्तर दिया उसका आकार नहीं है। वह तो सच्चिदानन्द है, यही उसका लक्षण है।

चौथा प्रश्न—हमने चौथा प्रश्न पूछा कि उसके मिलने का क्या उपाय है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बहुत दिन तक योग करने रूपी कर्म से ईश्वर की उपलब्धि होती है।

हमने पूछा—वह योग किस प्रकार का है ? उस पर स्वामी जी ने अष्टांग

योग की बातें हमको लिख दीं। वह कागज हमारे पास है और मौखिक इस प्रकार समझाया कि जब रात तीन घड़ी शेष रह जाये उस समय उठकर मुंह हाथ धो पद्मासन लगाये। जहां तुम्हारी इच्छा हो बैठे, परन्तु स्थान निर्जन हो। गायत्री का अर्थ सहित ध्यान करो और वह अर्थ भी लिख दिया जो अबतक मेरे पास विद्यमान है। (लेखराम पृष्ठ २१५-२१६)

मूर्ति पूजा

हुगली-शास्त्रार्थ

(चैत्र शुक्ला एकादशी, संवत् १९३०, ८ अप्रैल, १८७३)

एक पण्डित ताराचरण तर्करत्न नामक भाटपाड़ा ग्राम के निवासी हैं। जो कि ग्राम हुगली के पार है। उस ग्राम में उनकी जन्मभूमि है। परन्तु आजकल श्रीयुत काशीराज महाराज के पास रहते हैं। संवत् १९२९ में वे अपनी जन्मभूमि में गये थे। वहां से कलिकाता में भी गये थे और किसी स्थान में ठहरे थे।

जिनके स्थान में मैं ठहरा था, उनका नाम श्रीयुत राजा ज्योतीन्द्र मोहन ठाकुर तथा राजा शौरिन्द्र मोहन ठाकुर है। उनके पास तीन बार जा-जाकरके ताराचरण ने प्रतिज्ञा की थी कि हम आज अवश्य शास्त्रार्थ करने को चलेंगे। ऐसे ही तीन दिन तक कहते रहे। परन्तु एक वार भी न आये। इस से बुद्धिमान् लोगों ने उनकी बात झूठी ही जान ली।

मैं कलिकाता से हुगली में आया और श्रीयुत वृन्दावनचन्द्र मण्डल जी के बाग में ठहरा था। सो एक दिन उन्होंने अपने स्थान में सभा की। उस में मैं भी वक्तृत्व करने के लिए गया था। तथा बहुत पुरुष सुनने को आये थे। उनसे मैं अपना अभिप्राय कहता था। वे सब लोग सुनते थे। उसी समय में ताराचरण पण्डित जी भी वहां आये। तब उनसे वृन्दावन चन्द्रादिकों ने कहा कि आप सभा में आइये। जो इच्छा हो, सो कहिये। परन्तु सभा के बीच में पण्डित ताराचरण नहीं आये। किन्तु ऊपर जाकर दूर से गर्जते थे।

वहां भी उन्होंने जान लिया कि पण्डित जी कहते तो हैं, परन्तु समीप क्यों नहीं जाते। इस से जैसे वे ताराचरण जी थे, वैसे ही उन्होंने जान लिये। फिर जब नव घण्टा बज गया, तब लोगों ने मेरे से कहा कि अब समय दश घण्टा का है। उठना चाहिए। बहुत रात आ गई।

फिर मैं और सब सभास्थ लोग उठे। उठके अपने-अपने स्थान में चले गये। फिर मैं बाग में चला आया। उसके दूसरे दिन वृन्दावनचन्द्र मंडल जी ने

श्लोक

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यवचना।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रशरणा,
स को दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः ॥
श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामिना विरचितमिदमिति विज्ञेयम् ॥

मूर्त्तिपूजा

(पं० जगन्नाथ से छपरा में शास्त्रार्थ—मई, १८७३)

स्वामी जी छपरा पधारे तो जनता को उनके शुभ आगमन की सूचना देने व अवैदिक पाखण्डों पर उनके समर्थकों को शास्त्रार्थ के लिए आहूत करने के लिये नगर में विज्ञापन वितरण किया गया। छपरे में यदि कोई पं० स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर सकता था तो पं० जगन्नाथ थे। पौराणिक वर्ग उन्हीं के पास गये, और उनसे जाकर प्रार्थना की कि महाराज चलिये और नास्तिक दयानन्द से धर्म की रक्षा कीजिये। परन्तु पण्डित जी शास्त्रार्थ के नाम से कानों पर हाथ धर गये। उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ करने से मुझे नास्तिक का मुख देखना पड़ेगा जिसका शास्त्रों में निषेध है और मैंने ऐसा किया भी तो मुझे कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

पण्डित जी के यह वचन सुनकर पौराणिक धर्म के पृष्ठपोषकों की आशाओं पर पाला पड़ गया। और वे तेजोहीन और हताश होकर वापस चले आये। महाराज ने जब यह सुना तो उन्होंने पण्डित जगन्नाथ को इस उलझन से निकालने का एक विलक्षण परन्तु सरल उपाय बताया। उन्होंने कहा कि यदि पण्डित महोदय मेरा मुख नहीं देखना चाहते हैं तो मेरे सामने एक पर्दा डाल दिया जाय और वह उसकी ओट में शास्त्रार्थ कर लें परन्तु शास्त्रार्थ करें तो सही।

अब तो पण्डित जी भी निरुपाय हो गये। जो प्रधान आक्षेप उन्हें था वह भी न रहा और उन्हें शास्त्रार्थ के लिये क्षेत्र में आना ही पड़ा। वह सभास्थल में दलबल सहित पधारे। महाराज के मुख के सामने वास्तव में पर्दा डाला गया। एक ओर महाराज बैठे और पर्दे के दूसरी ओर पण्डित जगन्नाथ आसन पर सुशोभित हुए और विचित्र और मनोरंजक ढंग से शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

प्रथम स्वामी जी ने पण्डित जी से कुछ प्रश्न स्मृतियों में से किये, जिनका

उत्तर पण्डित जी ने दिया तो सही, परन्तु उनकी संस्कृत व्याकरण की अशुद्धियों से भरी हुई थी और उनका उत्तर भी स्मृतियों के कथनानुसार न था। स्वामी जी ने उनकी अशुद्धियों का भरी सभा में वर्णन किया और उनके उत्तर की पोल खोली। स्वामी जी के बे रोक-टोक, स्पष्ट, सुगम और ललित संस्कृत में भाषण और पण्डित जी के उत्तर की भाषा और भाव की अशुद्धियों और दोषों के स्पष्टीकरण से पण्डित जी के मुंह पर मुहर लग गई और उन्होंने हूँ हां तक न की। पण्डित जी की इस दशा व दुर्दशा को देखकर जनता को विश्वास हो गया कि पण्डित जगन्नाथ पाण्डित्य में शून्य हैं और उनका पक्ष भी निर्बल और वेद के प्रतिकूल है। (लेखराम पृ० २२७)

मूर्त्तिपूजा

(पंडित दुर्गादत्त डुमराओं निवासी से शास्त्रार्थ—अगस्त १८७३)

नोट—२६ जौलाई, सन् १८७३ से ८ अगस्त, सन् १८७३ तक स्वामी जी रियासत डुमराओं में ठहरे थे। उसी बीच में पंडित दुर्गादत्त डुमराओं निवासी से उनका यह शास्त्रार्थ हुआ था। महाराजा साहब डुमराओं ने रायबहादुर दीवान जयप्रकाश जी के द्वारा पंडित दुर्गादत्त जी को बुलाया और स्वामी जी को भी रेलवे वाली कोठी से तालाब के ऊपर वाली कोठी पर बुलाया। राजा साहब और दीवान साहब के अतिरिक्त वहाँ तीन सौ के लगभग मनुष्य थे। पंडित जी चूंकि महादेव के पुजारी थे और यह निश्चय हो चुका था कि शास्त्रार्थ मूर्तिखण्डन पर नहीं होगा इसलिये पण्डित जी इस विचार से कि मूर्ति के विना यात्रा करनी पाप है—शिवलिंग की मूर्ति साथ ले गये और अपने सामने कुर्सी पर रख दी और वार्ता आरम्भ हुई—

स्वामी जी—हम द्वैत मानते हैं। पंडित जी ने कहा कि इस श्रुति "एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म" से विरोध होता है अर्थात् आप का द्वैत मानना इस के विरुद्ध है।

स्वामी जी—इसका यह अर्थ नहीं जो आप समझे। इसका यह अर्थ है कि जैसे किसी के घर में कोई उपस्थित न हो तो वह कहता है कि यहां मैं एक ही हूँ और कोई नहीं परन्तु गांव वाले और नाते कुटुम्ब का निषेध नहीं। वे विद्य-मान हैं, उनका अस्वीकार नहीं। इसलिए सजातीय तथा जाति स्वगत भेद शून्य जो शंकराचार्य का मत है वह मिथ्या है, हम उसको नहीं मानते। यहां केवल दूसरे ब्रह्म का निषेध है न कि जीव का।

पण्डित जी—इस सिद्धान्त को तो हम नहीं मानते।

स्वामी जी—शंकराचार्य के सिद्धान्त को न मानने में हमने तो युक्ति दी है। परन्तु जो मानते तो आपके पास क्या प्रमाण है ?

इसका उन्होंने कोई उत्तर न दिया।

स्वामी जी ने मूर्त्ति के विषय में आक्षेप किया कि मूर्त्तिपूजा में श्रुति का प्रमाण नहीं।

पण्डित जी ने—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(यजु० ३१।११)

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् (यजु० ३।६०)

यह दो श्रुति प्रमाण दीं कि यदि मुख नहीं तो चारों वर्णों की उत्पत्ति कैसे हुई और मूर्त्ति नहीं तो मुख कहाँ से आया और दूसरा मन्त्र विशेष शिव की पूजा का है जिसके तीन नेत्र हैं और जाबालोपनिषद् में लिखा है—

धिक् भस्मरहितं भालं धिक् ग्राममशिवालयम्।

इत्यादि प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध है। आप कैसे कहते हैं कि मूर्त्तिपूजा में श्रुति प्रमाण नहीं है।

स्वामी जी ने प्रथम उन दो मन्त्रों का व्याकरण और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यथार्थ अर्थ करके उनके भ्रम को निवारण करने का प्रयत्न किया और बताया कि प्रामाणिक उपनिषदों में जाबाल नहीं है, वह जालोपनिषद् है—उसमें किसी ने वाक्यजाल रचा है। वेद के विरुद्ध है इसलिए अप्रमाण है। इस पर पण्डित जी ने कुछ उत्तर न दिया। समस्त श्रोतागण परिचित तथा स्वयं दीवान साहब साक्षी हैं।

फिर गीता के श्लोक "सर्वधर्मान् परित्यज्य" पर कुछ बातचीत होकर हँसी खुशी से सभा विसर्जित हुई। (लेखराम २२८-२२९)

अग्नि शब्द का क्या अर्थ है ?

(मोहम्याह नीलकंठ घोरी क्रिश्चियन से प्रयाग में संवाद)

बुधवार, १ जौलाई, सन् १८७४ के अन्त तक स्वामी जी प्रयाग में रहे। मोहम्याह नीलकंठ घोरी नामक एक क्रिश्चियन मरहठा जेण्टलमैन प्रोफेसर मैक्स-मूलर का किया हुआ ऋग्वेदभाष्य ले आया। यह बतलाने के लिए कि अग्नि के अर्थ केवल आग के हैं, ईश्वर के नहीं। स्वामी जी ने उसको यह उत्तर दिया कि

यदि प्रोफेसर मैक्समूलर ने वेदमन्त्रों का भाष्य करने के लिए केवल इन्हीं अर्थों का प्रयोग किया है तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि एक पक्षपातपूर्ण ईसाई होने के कारण उसकी हार्दिक इच्छा है कि वेदार्थ को बिगाड़े ताकि भारतवासी अज्ञानता में फंसकर वेदों को छोड़ दें और बाइबिल को ग्रहण करें। अतः उसके पक्षपातपूर्ण होने के कारण उसका भाष्य प्रामाणिक नहीं हो सकता। तत्पश्चात् स्वामी जी ने हिन्दू मरहठों के सामने जिन्होंने अपने हिन्दू धर्म से भटके हुए भाई को अपना धार्मिक अगुआ (अधिवक्ता) बनाया था—ईसाइयों के ईश्वर के विषय में अज्ञानतापूर्ण विचारों को प्रकट करने के लिये तौरेत बाबल के बुर्ज वाली कहानी की ओर संकेत किया जिसमें यह लिखा है कि प्राचीन पाश्चात्य जातियों ने ईसाइयों की देवमाला में आकाश पर चढ़ने का यत्न किया। उनके इस साहसपूर्ण निश्चय से ईसाइयों का ईश्वर चौंक पड़ा। अत्यन्त भयभीत होकर अपने बचाव के लिये बाबल के बुर्ज बनाने वालों की वाणी में गड़बड़ कर दी जो एक दूसरे की बात को समझने के अयोग्य होकर काम छोड़ बैठे और ईश्वर मनुष्यों के इस बर्बरतापूर्ण आक्रमण से बच गया।

ईसाइयों के ईश्वर का अपनी ही सृष्टि से डर जाना अत्यन्त अद्‌भुत और वर्णन से बाहर की बात है। निस्सन्देह वह अत्यन्त ही असभ्य होने चाहियें जिन्होंने कि आकाश की प्रकट और दिखलावे की महराबदार छत को परिमित ऊँचाई समझकर उस पर कृत्रिम साधनों से चढ़ना सम्भव समझा। इससे यह प्रतीत होता है कि ईसाइयों का विश्वास है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक और द्रष्टा नहीं प्रत्युत इसके विपरीत वह एक विशेष स्थान में सीमित है जिसके विषय में वे ठीक-ठीक नहीं बतला सकते।

ईसाई मरहठे ने इस आक्षेप का कुछ उत्तर न दिया परन्तु उसके और हिन्दू भाई कुछ बोले और विशेषतया काशीनाथ शास्त्री ने अत्यन्त धृष्टतापूर्ण शब्दों में स्वामी जी से पूछा कि किस प्रयोजन के लिये समस्त देश में कोलाहल कर रखा है।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मुझसे पहले पण्डितों ने बड़ी धूर्तता फैलाई है और उनकी बुद्धि पत्थरों के पूजने से पथरा गई है अर्थात् उनकी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये। जिसके कारण वे सत्य के सिद्धान्त को न समझ सके। शास्त्री फिर मौन होकर अपने मित्रों सहित चला गया।

(लेखराम पृष्ठ २६९)

वल्लभ मत

(वल्लभाचार्य-मतवालों के साथ शास्त्रार्थ बम्बई में १६ नवम्बर, १८७४)

बम्बई पहुँचकर जब स्वामी जी को वल्लभाचार्य मत का समस्त वृत्तांत विदित हुआ तो उसका यथार्थ ज्ञान हो जाने के पश्चात् उन्होंने लगातार उस मत के खंडन और उसकी पोल खोलने के लिये भाषण देने और उपदेश करने आरम्भ किये और ब्रह्म सम्बन्ध वाले मन्त्र की भी जिससे वह चेले और चेलियों का तन मन धन अपने अर्पण कराके ब्रह्मसम्बन्ध कराते हैं अच्छी प्रकार छीछालेदर की। गुसाईं जी की बहुत हानि होने लगी तब जीवनजी गुसाईं ने स्वामी जी के सेवक बलदेवसिंह जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि तुमको मैं एक हजार रुपया दूंगा यदि स्वामी जी को मार दो। उसी समय पाँच रुपया नगद और ५ सेर मिठाई प्रसाद के रूप में दी और हजार रुपये देने की प्रतिज्ञा करके एक रुक्का (प्रतिज्ञापत्र) लिख दिया। बलदेवसिंह अभी स्वामी जी के पास पहुँचा नहीं था उनको सूचना मिल गई कि तुम्हारा रसोइया जीवन जी के पास खड़ा है। जब वह पहुँचा तब स्वामी ने पूछा कि तुम गोकुलियों के मन्दिर में गये थे ?

बलदेवसिंह—हाँ महाराज गया था।

स्वामी जी—क्या ठहरा ?

बलदेवसिंह—पाँच रुपया नकद और पांच सेर मिठाई और यह रुक्का लिखकर दिया है कि मार दो तो हजार रुपये ले लो।

स्वामी जी— मुझको कई वार विष दिया गया है परन्तु मरा नहीं। बनारस में विष दिया गया, कर्णवास में राव कर्णसिंह चक्रांकिती ने पान में विष दिया तब भी नहीं मरा और अब भी नहीं मरूँगा।

बलदेवसिंह—महाराज मेरे कुल का काम विष देना नहीं है और फिर ऐसे को जिससे समस्त जगत् को लाभ पहुँच रहा है।

स्वामी जी ने मिठाई फिंकवा दी और रुक्का फाड़कर फेंक दिया और कहा कि "सावधान, भविष्य में उनके यहां कभी मत जाना"।

(लेखराम पृ० २४६)

अज्ञातनामा के प्रश्नों का उत्तर

बम्बई के रहने वाले किसी अज्ञात "प-ग-न" नाम ने कार्तिक शुक्ल ४, शुक्रवार, संवत् १९३१ को २४ प्रश्न छपवाकर स्वामी जी के पास भिजवाये। स्वामी-पूर्णानन्द ने स्वामी-दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति से इन प्रश्नों के उत्तर में निम्नलिखित विज्ञापन-पत्र प्रकाशित किया—

"विज्ञापन-पत्र"

विदित हो कि जैसा स्वामी नारायण है वैसा मैं नहीं हूँ और जिस प्रकार जयपुर नगर के गोसाईं की पराजय हुई—ऐसा भी मैं नहीं हूँ। बम्बई नगर के निवासी किसी एक हरिभक्तों के चरणों के इच्छुक "प-ग-न" ऐसे गुप्त नाम वाले पुरुष के संवत् १९३१, कार्तिक शुक्ल पक्ष ४, शुक्रवार को "ज्ञानदीपक" यन्त्रालय के छपे हुए २४ प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है—

पहले प्रश्न का उत्तर—प्रत्यक्षादि प्रमाणों को स्वीकार करता हूँ।

दूसरे प्रश्न का उत्तर—चारों वेदों को प्रमाण मानता हूँ।

तीसरे प्रश्न का उत्तर—चारों संहिताओं को प्रमाण मानता हूँ परन्तु परिशिष्ट को छोड़कर (अर्थात् परिशिष्ट को प्रमाण नहीं मानता, वह अप्रमाण है) ब्राह्मणादिकों को मैं मत के रूप में स्वीकार नहीं करता परन्तु उनके रचयिता जो ऋषि हैं उनकी वेद विषय में कैसी सम्मति है, यह जानने के लिए अध्ययन करता हूँ कि उन्होंने कैसा अर्थ किया है और उनका क्या सिद्धांत है।

चौथे का उत्तर—तीसरे में समझ लेना।

पाँचवें का उत्तर—शिक्षादिक जो वेदांग हैं और उनके कर्ता जो मुनि हैं उनकी वेद के विषय में कैसी सम्मति है यह जानने के लिये देखता हूँ। उनको मत मान के स्वीकार नहीं करता।

छठे का उत्तर—वेद, वेदांग, भाष्य और उनके व्याख्यान जो आर्ष अर्थात् ऋषिप्रणीत हैं उनको मत मानकर स्वीकार नहीं करता किन्तु परीक्षा के लिये वे ठीक किये गये हैं वा नहीं किये गये इसलिये देखता हूँ, वह मेरा मत नहीं है।

सातवें का उत्तर—जैमिनीकृत पूर्वमीमांसा, व्यासकृत उत्तरमीमांसा, चरणव्यूह—इनको भी मत मानकर संग्रह नहीं करता किन्तु इनके मत की परीक्षा के लिये देखता हूँ; और प्रकार नहीं।

आठवें का उत्तर—पुराण, उपपुराण, तंत्रग्रन्थ, इनके अवलोकन और अर्थ में श्रद्धा ही नहीं करता, इनके प्रमाण की कथा तो क्या कथा है।

नववें का उत्तर—सारा भारत और वाल्मीकिरचित रामायण का प्रमाण नहीं क्योंकि लोक में बहुत प्रकार व्यवहार है। उनके वृत्तान्त का जानना ही उनका अभिप्राय है क्योंकि वह मर चुके हैं।

दसवें का उत्तर भी नववें में समझ लेना।

ग्यारहवें का उत्तर—मनुस्मृति को मनु का मत जानने के लिये देखता हूँ उसको इष्ट समझ कर नहीं।

बारहवें का उत्तर—याज्ञवल्क्यादि और मिताक्षरादि का तो प्रमाण ही नहीं करता।

तेरहवें का उत्तर—बारहवें में समझ लेना।

चौदहवें का उत्तर—विष्णुस्वामी आदि जो सम्प्रदाय हैं उनका प्रमाण मैं लेशमात्र भी नहीं करता प्रत्युत उनका खण्डन करता हूँ क्योंकि ये सारे सम्प्रदाय वेद-विरुद्ध हैं।

पन्द्रहवें का उत्तर चौदहवें में समझ लेना।

सोलहवें का उत्तर—मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ प्रत्युत वेद का अनुयायी हूँ, ऐसा समझना चाहिये।

सत्रहवें का उत्तर—जगदुत्पत्ति जैसी वेद में लिखी है और जिसने की है, उस सारे को उसी प्रकार मानता हूँ।

अठारहवें का उत्तर—जिस समय से सृष्टि का क्रम हुआ है उस काल को कोई संख्या नहीं है, यह जानना चाहिये।

उन्नीसवें का उत्तर—वेदोक्त जो यज्ञादि कर्म हैं वह यथाशक्ति सब करने चाहियें।

बीसवें का उत्तर—वेदोक्त जो विधि है वह माननी चाहिये, और नहीं।

इक्कीसवें का उत्तर—शाखाओं में जो कर्म कहे हुए हैं वे वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं, विरुद्ध होने से नहीं।

बाईसवें का उत्तर— परमेश्वर का कदाचित् जन्म-मरण नहीं होता। (जिसके जन्म-मरण होते हैं, वह ईश्वर ही नहीं है) सर्वशक्तिमान् होने से, अन्तर्यामी होने से, निरवयव होने से, परिपूर्ण होने से, न्यायकारी होने से।

तेईसवें का उत्तर—मैं संन्यासाश्रम में हूँ।

चौबीसवें का उत्तर—सत्य धर्म विचार नामक पुस्तक जिसने यन्त्रालय में छपवाई, उसका मत उसमें है, मेरा उसके मत में आग्रह नहीं।

यदि हम आर्य्य लोग वेदोक्त धर्म के विषय में प्रीतिपूर्वक पक्षपात को

छोड़कर विचार करें तो सब प्रकार कल्याण ही कल्याण है, यही मेरी इच्छा है। तिसके लिये नित्य सभा होनी चाहिए तो श्रेष्ठ समझो। जिस प्रकार से बहुत प्रकार के सम्प्रदायों का नाश हो जाये वैसा सबको करना चाहिये।

परन्तु १३, १४, १५, प्रश्नों का पीसे को फिर पीसना उसके सामन पुनरुक्त दोष से दूषित को न समझकर यह मैं ने जाना कि जिसको प्रश्न करने का ज्ञान नहीं उसके समागम में उचित विचार किस प्रकार हो सकेगा, ऐसी मेरी सम्मति है क्योंकि जहां भोजन की ही चिन्ता है वहां धन का एकत्रित होना असम्भव है और जिसने प्रश्न किये उसने अपना नाम भी नहीं लिखा, यह भी एक दोष है। ऐसा सज्जनों को समझना चाहिए। इसमें स्वामी जी की सम्मति है। इसके उपरान्त जो कोई अपना प्रकट नाम लिखने के विना प्रश्न करेगा, उसका उत्तर उसी से दिलाऊँगा और जिस सम्प्रदाय को जो मानता है उसको संक्षेपतया जब तक न कहेगा तब तक उसका भी उसी से दिलाऊंगा। प्रसिद्ध कर्त्ता स्वामी पूर्णानन्द, कार्तिक शुक्ल ७, सोमवार, संवत् १९३१, तदनुसार १६ नवम्बर, सन् १८७४। उसके पश्चात् न तो उस पहले प्रश्नकर्त्ता ने मुख दिखलाया और न किसी और ने सम्मुख होकर शास्त्रार्थ कियाऔरनगिट्टूलाल शास्त्री आदि वैष्णव मत के विद्वानों ने कभी शास्त्रार्थ करने का नाम लिया और न कभी स्पष्ट अपना नाम लिखकर कोई विज्ञापन प्रकाशित किया। रणक्षेत्र का वीर बनकर सामने आना और मूर्त्तिपूजा को वेदानुकूल सिद्ध करना तो नितान्त असम्भव और जान का जंजाल हो गया। (लेखराम पृष्ठ २४६-२४८)

मूर्त्तिपूजा

(भडौंच में पण्डितों से शास्त्रार्थ—दिसम्बर, १८७४)

स्वामीजी के व्याख्यान भडौंच में नर्मदा के तट पर भृगुऋषि की धर्मशाला मे हुए। पहले व्याख्यान की समाप्ति पर पण्डित माधवराव त्र्यम्बकराव स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को सम्मुख आये। पण्डित माधवराव दक्षिणी ब्राह्मण थे। और अनेक सम्भ्रान्त लोग उनके शिष्य थे। वह थे तो गृहस्थी, परन्तु महन्त समझे जाते थे और भडौंच के लोग उनका बहुत सम्मान करते थे कट्टर सनातनी और दाम्भिक थे। वे सभा में शास्त्रार्थ करने के अभिप्राय से ही आये थे और अपने अनेक शिष्यों को साथ ले आये थे। उनके एक शिष्य ने स्वामी जी से कहा कि पण्डित माधवराव आपसे शास्त्रार्थ करने के इच्छुक हैं। स्वामी जी के यहाँ क्या देर थी? उन्होंने तुरन्त उत्तर दे दिया कि हम उद्यत हैं। इस पर पण्डित माधवराव आगे आये और निम्न प्रकार प्रश्नोत्तर हुए।

दया०—आपने क्या पढ़ा है?

माधव०—कौमुदी आदि व्याकरण और कुछ काव्य पढ़ा है।

दया० जब आपने वेदादि आर्ष ग्रन्थ पढ़े ही नहीं तो आप उनके विषय में शास्त्रार्थ कैसे करोगे ?

माधव०—मैंने कुछ ऋग्वेद भी पढ़ा है।

दया०—चारों वेदों में से किसी मन्त्र को लेकर उसका पदच्छेद पूर्वक अर्थ करके दिखाइये कि उससे मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। फिर मैं आर्ष ग्रन्थों की रीति के अनुकूल उसका अर्थ करूँगा और तत्पश्चात् आपके और अपने अर्थ काशी आदि स्थानों के बड़े-बड़े पण्डितों के पास भेज दिये जायेंगे कि वे किसके अर्थों का अनुमोदन करते हैं।

स्वामी जी के इतना कहते ही पण्डित कृष्णराम ने चारों वेदों के पुस्तक स्वामी जी के सामने लाकर रख दिये। तब स्वामी जी ने कहा कि चारों वेदों में से किसी वेद का कोई मन्त्र निकालकर अर्थ कीजिए। पं० माधवराव ने ऋग्वेद का एक मन्त्र निकाला और उसका अर्थ करने लगे स्वामी जी ने पद-पद पर उनके अर्थों की अशुद्धि दिखानी आरम्भ की। परिणाम यह हुआ कि पण्डित माधवराव थोड़ी ही देर में चुप होकर बैठ गये। तब स्वामी जी ने उनसे कहा कि अभी आप कुछ और पढ़िए और तब शास्त्रार्थ करने आइए। माधवराव ने समझा कि स्वामी जी मेरा अपमान करते हैं, विशेषकर शिष्यों के सामने, इस प्रकार के पराजय से वह बहुत क्रोध में आये और उसी दशा में अपने शिष्यों सहित सभा से उठकर चले गये। शास्त्रार्थ के बीच में ही माधवराव का एक शिष्य स्वामी जी की ओर हाथ करके उनके लिए कुछ अपशब्द कह बैठा था। इस पर बलदेवसिंह को इतना आवेश आया कि वह खड़े हो गये और कड़क कर बोले कि क्या तुम श्रीमहाराज का अपमान करने आये हो, मेरी उपस्थित में ऐसा नहीं हो सकता। स्वामी जी माधवराव के शिष्य के असभ्य व्यवहार से तनिक भी धैर्यच्युत नहीं हुए। वे गम्भीर जलवत् शान्त रहे। उन्होंने बलदेव सिंह को यह कहकर शान्त कर दिया कि क्यों क्रोध करते हो, यह भी तो हमारा भाई है।

(देवेन्द्रनाथ १।३०९)

मूर्त्ति-पूजा और अद्वैतवाद

(पं० महीधर व पं० जीवनराम शास्त्री से शास्त्रार्थ राजकोट में—जनवरी १८७५)

महाराज के उपदेशों से लाभ उठाने अनेक लोग उनके पास आते थे। कोई-कोई किसी विषय पर वाद-प्रतिवाद भी करते थे। एक दिन पं० महीधर और जीवनराम शास्त्री उनके साथ मूर्त्ति-पूजा और अद्वैतवाद पर शास्त्रार्थ

करने आये। पण्डित महीधर ने पहले मूर्त्ति-पूजा सिद्ध करने का प्रयास किया, परन्तु स्वामी जी ने शीघ्र ही उन्हें निरुत्तर कर दिया। फिर उन्होंने वेदान्त पर बातचीत की। स्वामी जी ने उनसे कहा कि यदि आप ब्रह्म हैं तो अपने शरीर के साढ़ेतीन करोड़ लोमों में से एक को उखाड़ कर पुनः स्थापित कर दीजिये। ब्रह्म सर्वज्ञ और आप अल्पज्ञ हैं, फिर आप ब्रह्म कैसे हो सकते हैं ? इस पर पं० महीधर कुछ न कहसके और निरुत्तर हो गये। (देवेन्द्रनाथ १।३१७, लेखरामपृ० २५३)

मूर्त्तिपूजा

(अहमदाबाद में पंडितों से शास्त्रार्थ—जनवरी १८७५)

२७ जनवरी को रावबहादुर विट्ठलदास के गृह पर एक सभा हुई। जिसका उद्देश्य स्वामी जी की विदासूचक संवर्द्धना करना और आर्य्यसमाज-स्थापना के विषय में परामर्श करना था। सभा में बेचरदास अम्बाईदास, गोपालराव हरि देशमुख, भोलानाथ साराभाई, अम्बालाल सागरलाल प्रभृति महानुभाव उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त शास्त्रीगण भी थे। जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—शास्त्री सेवकराम, लल्लूभाई बापू जी, भोलानाथ भगवान्।

शास्त्रीगण कहते थे कि मूर्त्तिपूजा हमारे शास्त्रों के अनुकूल है। इस पर बेचरदास अम्बाईदास ने उनसे कहा कि स्वामी जी आपसे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं, आप उनसे शास्त्रार्थ क्यों नहीं कर लेते ? परन्तु शास्त्री लोग इस पर सहमत नहीं हुए। उनसे शास्त्रार्थ न करने का कारण पूछा गया। उन्होंने कहा कि स्वामी जी ने—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ यजु० ३३।४३॥

वेदमन्त्र का अर्थ अशुद्ध किया है। इस पर सब लोगों ने पण्डितों से अपना अर्थ करने का अनुरोध किया और कहा कि यह प्रतिपादित करो कि स्वामी जी ने भूल की है और आपका अर्थ ठीक है। अपने किए हुए अर्थों के नीचे अपने हस्ताक्षर कर दो। कुछ पण्डित तो सहमत हो गये और उन्होंने अर्थ करके हस्ताक्षर कर दिये और कुछ इस पर भी सहमत न हुए। स्वामी जी ने निम्न अर्थ करके उस पर हस्ताक्षर कर दिये।

स्वामी जी के किये अर्थ—

(आकृष्णेन) आकर्षणात्मना (रजसा) रजोरूपेण रजतस्वरूपेण वा (रथेन) रमणीयेन (देवः) द्योतनात्मकः (सविता) प्रसवकर्ता वृष्ट्यादेः (मर्त्यम्)

मर्त्यलोकम् (अमृतम्) ओषध्यादिरसं (निवेशयन्) प्रवेशयन् (भुवनानि पश्यन्) दर्शयन् (याति) रूपादिकं विभक्तं प्रापयतीत्यर्थः (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मयेन ।

(सविता) सर्वस्य जगत उत्पादकः (देवः) सर्वस्य प्रकाशकः (मर्त्यम्) मर्त्यलोकस्थान् मनुष्यान् (अमृतम्) सत्योपदेशरूपम् (निवेशयन्) प्रवेशयन् सर्वाणि (भुवनानि) सर्वज्ञतया (पश्यन्) सन् (आकृष्णेन) सर्वस्याकर्षणस्वरूपेण परमाणूनां धारणेन वा (रथेन) रमणीयेनानन्दस्वरूपेण वर्त्तमानः सन् (याति) धर्म्मात्मनः स्वान् भक्तान् सकामान् प्रापयतीत्यर्थः ।

संवत् १९३१ पौष बदि षष्ठी, बुधवार, ७ काल, ४० मिनिट सही सम्मतिरत्र दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः ।

शास्त्रियों के किये अर्थ—

(आकृष्णेन) ईषत्कृष्णेन (रजसा वर्तमानः) सहितः (सविता देवः) सूर्य्यः (अमृतम्) स्वर्गं (मर्त्यम्) भूलोकं (निवेशयन्) स्वस्वप्रदेशेषु स्थापयन् (हिरण्येन रथेन) स्यन्दनेन (भुवनानि पश्यन् याति) गच्छति ।

सही—लल्लूभाई बापूशास्त्रिणः सम्मतोऽयमर्थः ।
शास्त्री सेवकराम रामनाथः ।
सम्मतिरत्र भास्करशास्त्रिणः ।
सम्मतिरत्र अमृतरामशास्त्रिणः ।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने एक वक्तृता दी जिसमें कहा कि सबको वेदों का अनुकरण करना चाहिये ।

गोपालरावहरि, भोलानाथ, अम्बालाल आदि ने दोनों के अर्थों को देख और समझकर कहा कि शास्त्री अविवेकी और दुराग्रही हैं, स्वामी जी का किया अर्थ ही ठीक है ।

इस मन्त्र का जो अर्थ स्वामी जी ने किया था, उस पर उन निष्कारण वैरी पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री ने बहुत आक्षेप किया और उसे अशुद्ध बताया था। उसके सम्बन्ध में स्वामी जी ने अपने एक पत्र में संवत् १९३१, फाल्गुन शुक्ला ९ को गोपालराव हरि देशमुख को लिखा था कि उस विष्णु शास्त्री के विषय में एक बानगी लिखते हैं कि ऐसी मूर्खता कोई विद्यार्थी भी नहीं करेगा। 'ऋ गतिप्रापणयोः' इस धातु से रथ शब्द सिद्ध होता है। 'रमु क्रीडायाम्' इस धातु से नहीं, इससे यह अर्थ निर्युक्त और निर्मूल है। स्वामी जी ने लिखा है कि पाणिनिमुनिरचित उणादिगण सूत्र प्रमाण—

'हनि-कुषि-नी-रमि-काशिभ्यः' क्थन् । हयः, कुष्ठः, निथः, रथः, काष्ठम् ।

यास्को निरुक्तकारः—रथो रंहतेर्गतिकर्मणः इत्यत्र रममाणोऽस्मिस्तिष्ठतीति वेति॥

इससे 'रम' धातु से ही रथ शब्द सिद्ध होने से "रमणीयो रथो रमतेऽस्मिन्निति वा।"

इन प्रमाणों को देखते हुए कौन कह सकता है कि विष्णुपरशुराम शास्त्री ने स्वामी जी पर रथ शब्द की निरुक्ति को अशुद्ध कहकर अपने नाम और विद्वत्ता को कलङ्कित नहीं किया ? उनका ऐसा करना केवल छिद्रान्वेषण करने के अभिप्राय से ही था।

उपर्युक्त प्रचार से वेदार्थविषयक बातचीत होने के पश्चात् शास्त्रियों का स्वामी जी से मूर्त्तिपूजा और वर्णाश्रम पर भी वार्तालाप हुआ था। शास्त्रियों ने भोलानाथ साराभाई और अम्बालाल सागरमल को मध्यस्थ बनाया था। विचार की समाप्ति पर दोनों ही मध्यस्थों ने अपनी सम्मति स्वामी जी के पक्ष में व शास्त्रियों के विरुद्ध दी थी। अन्त में लोगों ने स्वामी जी को धन्यवाद दिया और गोपालराव हरि देशमुख ने उनके भाषण से सन्तुष्ट होकर उन्हें एक सुन्दर पीताम्बर भेंट किया।

रावबहादुर गोपालरावहरि देशमुख पहले वेदों के विरोध में लेख और पुस्तक लिखा करते थे। स्वामी जी के बम्बई में दर्शन, सत्संग और व्याख्यान-श्रवण से उनका संशयोच्छेदन हो गया और वे स्वामी जी के भक्त बन गये। स्वामी जी उन्हीं के निमन्त्रण पर अहमदाबाद गये थे।

(देवेन्द्रनाथ १। ३२३, लेखराम पृ० २५८)

व्याकरण एवं नियोग

(बम्बई में पण्डितों से शास्त्रार्थ—मार्च, १८७५)

किसी कारण से बम्बई के पंडितों की यह धारणा हो गई थी कि स्वामी जी व्याकरण में बहुत व्युत्पन्न नहीं हैं। अतः उन्होंने सोचा कि यदि दयानन्द को व्याकरण विषयक शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया जायगा तो उनकी ख्याति और प्रभाव मन्द पड़ जायेंगे और फिर धर्म्म-विषय में भी लोग उनके कथन में श्रद्धा और विश्वास न करेंगे। अतः उन्होंने उक्त विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामी जी को आहूत किया। ज्यों ही शास्त्रीगण के यह शब्द महाराज के कर्णगोचर हुए, त्यों ही उन्होंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और शास्त्रार्थ की तिथि १० मार्च, सन् १८७५ नियत हो गई।

नियत दिवस और समय पर सभा-मण्डप में अपूर्व चहल-पहल दिखाई देने लगी। बड़े-बड़े सेठ आये, साहूकार आये, बैरिस्टर और सालिसिटर आये,

कालेजों के महोपाध्याय और स्कूलों के उपाध्याय आये, शिक्षित लोग भी आये और अशिक्षित भी, उष्णीषमण्डित पण्डित आये और दयानन्द को पराजित करने की आशा साथ लाये। दयानन्द भी आये, उनका मुखमण्डल सदा की भाँति प्रसन्न था, उस पर न चिन्ता की रेखा थी और न भय का चिह्न। सभास्थल में एक बड़ा सिंहासन बनाया गया था और उस पर वेदादि की पुस्तकें प्रमाण के लिये रक्खी गई थीं। स्वामी जी आकर सिंहासन पर विराजमान हो गये। पंडितों ने इस पर आपत्ति की तो स्वामी जी ने कहा कि हम संन्यासी होने के कारण बैठे हैं। आप लोग हमसे कुछ प्रश्न करें, यदि हम उत्तर न दे सकेंगे तो हम सिंहासन से उतर जायेंगे और आप बैठ जाना।

श्री आत्माराम बापू-दल शास्त्रार्थ-सभा के सभापति पद पर प्रतिष्ठित हुए। पण्डितों की ओर से पण्डित खेमजी बालजी जोशी ने भाषण आरम्भ किया। जोशी जी वाक्पटु समझे जाते थे, अतः श्रोतृवर्ग उनके कथन को उत्कण्ठा और आशा से सुनने लगे। परन्तु जोशी जी ने प्रकृत विषय पर तो कुछ नहीं कहा, इधर-उधर की बातें कहनी आरम्भ कर दीं। श्रोता उकताने लगे और उनकी ओर से जोशी जी को चुप कराने की चेष्टा होने लगी। परन्तु वह चुप होने वाले न थे, वह अप्रासंगिक बातें कहते ही रहे। अन्त में श्रोतृगण उनकी बातों से सर्वथा विरक्त हो गये और उन्हें अधिक समय नष्ट करने का अवकाश देने से श्रोताओं ने इन्कार कर दिया। इस पर जोशी जी को चुप होना ही पड़ा। तत्पश्चात् पण्डित इच्छाशंकर मुकुल ने स्वामी जी से व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न आरम्भ किये। स्वामी जी उनके उत्तर देते रहे। जब पंडित इच्छाशंकर के प्रश्न समाप्त हो गये और वह स्वामी जी के उत्तरों पर कोई आपत्ति न कर सके तो फिर स्वामी जी ने उनसे प्रश्न करने आरम्भ किये। पंडितों के उत्तर लिखे गये और स्वामी जी ने महाभाष्यादि ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा उनके उत्तरों को भ्रम-पूर्ण सिद्ध कर दिया। पंडितगण स्वामी जी के आक्षेपों का निराकरण न कर सके और विवश होकर उन्हें अपनी भ्रान्ति स्वीकार करनी पड़ी। सब लोगों को प्रतीत हो गया कि पण्डित वर्ग तो स्वामी जी से क्या उनके शिष्यों से भी तर्क करने की योग्यता नहीं रखता।

तत्पश्चात् पण्डितों ने नियोग पर कुछ आक्षेप किया जिनका उत्तर स्वामी जी ने इस ढंग से और ऐसी योग्यता और प्रबल युक्तियों से दिया कि पण्डितों को अनन्योपाय होकर मौन ही धारण करना पड़ा। पण्डितों की इस बार भी स्वामी जी को परास्त करने की आशा निराशा में ही परिणत हुई और वह खिन्न और विषादपूर्ण हृदयों के साथ घरों को लौटकर आये।

(देवेन्द्रनाथ १। ३२८, लेखराम पृष्ठ २५१)

मूर्त्तिपूजा

(बम्बई में शास्त्रार्थ' आचार्य कमलनयन जी से—१२ जून, १८७५)

बम्बई में नियमपूर्वक समाज स्थापित करके स्वामी जी द्वितीय वार अहमदाबाद पधारे और वहाँ प्रबल युक्तियों से स्वामी जी ने नारायणमत की समीक्षा की। बम्बई से स्वामी जी के चले आने के पश्चात् वहाँ के पौराणिक पंडितों ने यह प्रसिद्ध किया कि स्वामी जी शीघ्र यहाँ से चले गये नहीं तो हम उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत थे। जब इनके मिथ्या प्रवाह से लोगों में कुछ भ्रान्ति सी होने लगी तो समाज के मंत्री ने बम्बई से तार भेजकर स्वामी जी को अहमदाबाद से बुलवाया। स्वामी जी के आते ही पौराणिक पंडितों को मुँह दिखाना कठिन हो गया। लोगों के आग्रह करने पर भी शास्त्रार्थ से जी चुराने लगे। पं० कमलनयन आचार्य भी जो बम्बई के पौराणिक पंडितों के शिरोमणि माने जाते थे शास्त्रार्थ से बचने लगे। निदान बहुत से प्रतिष्ठित सभ्य लोगों के बाधित करने पर उन्होंने बड़ी कठिनता से स्वामी जी के सम्मुख आना स्वीकार किया। १२ जून शास्त्रार्थ की तिथि नियत हुई। शास्त्रार्थ का स्थान फ्राम जी क्राउस जी इनस्टीट्यूट' नियत हुआ। नियत समय पहले से लोग आने लगे। दोपहर के तीन बजे पश्चात् स्वामी जी पधारे और उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा के साथ एक उच्च स्थान पर कुरसी पर बिठाया गया। उनके सामने ही एक कुरसी आचार्य कमलनयन जी के लिए बिछायी गई। बीच में लगभग डेढ़ सौ प्रामाणिक संस्कृत की पुस्तकें रक्खी गईं जिससे कि दोनों पक्षों को प्रमाणों के देखने का सुभीता रहे! चौंतरे के नीचे आठ कुर्सियां समाचार पत्रों के पत्र-प्रेषकों के लिए क्रम से लगाई गई थीं। ये वास्तव में दोनों ओर की उक्तियां लिखने के लिये आये थे। इस सभा में बम्बई के लगभग समस्त सेठ, साहूकार, अधिकारी और प्रतिष्ठित शिक्षित पुरुष उपस्थित थे। यथा रायबहादुर बेचरदास अलवाईदास, सेठ लक्ष्मीदास खेम जी, सेठ मथुरादास लोजी, राव बहादुर दादूबा पाण्डुरङ्ग, भाई शंकरनाना भाई गंगादास किशोरदास, हरगोविन्ददास, राणा मनसुखराम सूरजराम, रणछोड़ भाई उदयराम, विष्णु परशुराम इत्यादि प्रायः श्रीमान् और विद्वान् उपस्थित थे। इस समय यह खबर उड़ी कि आचार्य कमलनयन जी यहां इसलिए नहींआवेंगे कि यह जगह एक पारसी की है। कारण यह था कि रामानुज सम्प्रदाय के यह आचार्य थे और इनके अनुयायी नहीं चाहते थे कि हमारे आचार्य के गौरव में अन्तर पड़े। परन्तु ज्यों त्यों आध घण्टे के पीछे आचार्य जी अपने २५-३० शिष्यों के सहित सभा में सुशोभित हुए और स्वामी जी के सामने वाली कुर्सी पर विराजमान हो गये, निदान राव बहादुर बेचरदास अलबाईदास जी को सभापति बनाया गया और उन्होंने आरम्भ में एक उपयुक्त वक्तृता की जिसका सार यह था कि वास्तव में

हम सब पौराणिक और मूर्त्तिपूजक हैं और मैं स्वयं मूर्त्तिपूजा किया करता हूँ। परन्तु हम सब यहां पर शास्त्रार्थ सुनने एकत्र हुए हैं। आग्रह और पक्ष को अपने चित्त से हटाकर स्वामी जी और आचार्य जी की विद्यापूरित और सारगर्भित वक्तृताओं को सुनें और सत्य को ग्रहण करें। हठ और विवाद से काम न लें। इस समय सब से प्रधान विषय मूर्तिपूजा है। स्वामी जी का यह पक्ष है कि मूर्त्तिपूजा वेदों से निषिद्ध है और इसलिए वह पापकर्म है। आचार्य जी का पक्ष इसके सर्वथा विपरीत है अर्थात् वे मूर्तिपूजा को वेद-विहित समझते हैं। बस अब हमें दोनों महाशयों की उचित प्रत्युक्तियों को एकाग्र मन होकर बड़े ध्यान से सुनना चाहिए। किसी प्रकार का क्रोध, आवेग और कोलाहल नहीं करना चाहिए। अन्त में सेठ साहब ने यह भी विज्ञापित कर दिया था कि वास्तव में यह शास्त्रार्थ दो महाशयों के परस्पर प्रतिज्ञा का परिणाम है जिन्होंने इसके व्यय का सारा भार परस्पर आधा बाँटकर अपने ऊपर लिया है उनके नाम ठक्कर जीवन दयालु जी और मारवाड़ी शिवनारायण वेनीचन्द हैं। ठक्कर जी ने मारवाड़ी शिवनाराण बैनीचन्द से (जो सदा आचार्य कमलनयन जी के पक्ष का आश्रय लिया करते हैं) यह कहा था कि यदि आचार्य जी शास्त्रार्थ में स्वामी जी को जीत लेंगे तो मैं आचार्य जी का शिष्य हो जाऊँगा अन्यथा आपको स्वामी जी का भक्त होना पड़ेगा। शास्त्रार्थ का विषय मूर्त्तिपूजा है। मैं फिर निवेदन करता हूँ कि आप सब महाशय स्वस्थचित्त होकर आचार्य जी और स्वामी जी की पाण्डित्य भरी वक्तृताओं को सुनें और अपने लिए उसका परिणाम निकालें।

सेठ साहब अपनी वक्तृता समाप्त करके बैठ गये। तदनन्तर मारवाड़ी शिवनारायण वेनीचन्द ने यह विवाद उपस्थित किया कि ठक्कर जी से मैंने यह भी कह दिया था कि मूर्त्तिपूजा की सिद्धि में पुराणों के भी प्रमाण दिये जावेंगे। परन्तु ठक्कर जी के प्रतिज्ञा पत्र प्रस्तुत करने पर वे मौन हो गये, यह प्रतिज्ञा-पत्र सेठ साहब ने सभा में उच्चैः स्वर से सबको सुना दिया। उसमें इस बात की गन्ध भी नहीं थी। निदान मारवाड़ी जी को चुप होना पड़ा। अब आचार्य कमलनयन जी की वारी आई, वे कहने लगे कि कितने पण्डित इस सभा में उपस्थित हैं, पहले वे मुझे अपने-अपने मत से सूचना देवें कि किन-किन सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखते हैं। यह सुनकर विचारशील पुरुषों ने कहा कि यह एक अत्यन्त असङ्गत और व्यर्थ प्रश्न है। आपको इस समय साधारण रीति पर किसी के विश्वास वा मत से कुछ प्रयोजन न होना चाहिए। सभापति आप की सम्मति से नियत-हो चुके हैं बाकी सब श्रोतागण शेष हैं उनको शास्त्रार्थ की समाप्ति पर अधिकार है कि कुछ सम्मति निर्धारण करें। परन्तु आचार्य जी ऐसी युक्ति-युक्त बातों को कब सुनते थे कहने लगे कि हम कैसे समझें कि यह लोग किन-

किन सम्प्रदायों के और ठीक-ठीक सम्मति निर्धारण कर सकेंगे या नहीं ? यह सुनकर पं० कालिदास गोविन्द जी शास्त्री खड़े हुए और आचार्य जी को सम्बोधन करके कहने लगे कि आप व्यर्थ इस प्रकार की बातों से अपना और उपस्थित लोगों का समय नष्ट करना चाहते हैं । मैं आप के सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं निष्पक्ष और सत्य-सत्य जो कुछ मेरी समझ में आवेगा अन्त में प्रकट कर दूंगा और जो कुछ शास्त्रार्थ सुनने के बाद मेरी सम्मति होगी वह भी नहीं छिपाऊँगा और आप दोनों की वक्तृता अक्षरशः लिखता जाऊंगा । शोक कि आचार्य जी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया । तब स्वामी जी ने कोमलता और प्रीति के साथ आचार्य जी से कहा कि आज का दिन मैं अत्यन्त मांगलिक समझता हूँ कि आप धर्म के एक आवश्यक विषय पर मुझ से वार्तालाप करने के लिए यहाँ पधारे हैं और लोगों के इतने संग्रह से यह प्रकट है कि लोगों में सत्यासत्य के निर्णय करने का सच्चा और प्रबल उत्साह है । मेरा जो पक्ष है वह सभापति महाशय ने बड़ी उत्तमता के साथ सर्व साधारण को अभी सुना दिया है इसी प्रकार आपका भी । अब आप को उचित है कि मूर्त्तिपूजा को वेदों में सिद्ध करें, प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रमाण देवें जिससे प्रकट हो कि प्रमाण और प्रतिष्ठा (मूर्त्ति में प्राण का संचार हो जाता है) आवाहन (जिससे उनको बुलाया जाता है) विसर्जन (जिससे उनको विदा किया जाता है) पूजन (जिससे उन्हें प्रसन्न और आनन्दित किया जाता है) इत्यादि करना सार्थक और उचित है । यों तो इस समय एक सज्जन और विचारशील सेठ साहब सभापति हैं परन्तु मेरी सम्मति में मेरे और आपके वास्तविक मध्यस्थ चारों वेद हैं । आप विश्वास रखें हम में से लेशमात्र भी किसी का पक्ष न करेंगे । उचित रीति यह है कि हमारे कथोपकथन अक्षरशः पीछे से प्रकाशित कर दिये जावें जिससे कि सर्वत्र पण्डितों को अपनी स्वतंत्र सम्मति निर्धारण करने का अवसर मिल सके । स्वामी जी की यह समीचीन उक्ति सुनकर भी आचार्य जी की समझ में नहीं आया और वे अपना हठ करते रहे कि हमने जो कुछ कहा है जब तक वह नहीं होगा शास्त्रार्थ नहीं हो सकता । जिसका स्पष्ट यह आशय था कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते । यह व्यवस्था देखकर सेठ मथुरादास लोजी खड़े हुए और उन्होंने आदि से अन्त तक वह कार्यवाही सुनायी जो उन्होंने कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों की प्रेरणा से आचार्य कमलनयन जी से शास्त्रार्थ के विषय में की थी ।

आचार्य जी में इतना साहस कब हो सकता था कि सेठ जी के एक शब्द का भी प्रत्याख्यान करें । निदान अत्यन्त लज्जित होकर बिना कुछ कहे सुने सभा से उठकर चल दिये । इस पर प्रधान सभा ने आचार्य जी को सम्बोधन करके

कहा कि आप इस प्रकार बिना कुछ कहे जाते हैं यह उचित नहीं है। सहस्रों मनुष्य आज बड़े उत्साह से आपके पाण्डित्य का चमत्कार देखने आये थे, उनको बड़ी भारी निराशा होगी। स्वामी जी ने फिर आचार्य जी से कहा कि आजकल मूर्त्तिपूजा से लाखों मनुष्यों का निर्वाह होता है यदि आप उनकी आजीविका स्थिर रखना चाहते हैं तो इससे बढ़कर और कौन-सा अवसर होगा। परन्तु आचार्य को तो वहां एक क्षण भर ठहरना भी कठिन हो गया था। वे अपने मन में कहते थे कि वह कौन-सी घड़ी हो जो मैं अपने घर पहुँच जाऊँ। परिणाम यह हुआ कि आचार्य जी जैसे कोरे आये थे वैसे ही चले गये। आचार्य जी के चले जाने के पश्चात् सेठ छबीलदास लल्लूभाई और राजमोहन राजेश्वरी बोल जी ठाकुर ने रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य की इस उदासीनता पर अत्यन्त शोक प्रकट किया। इसी सभा में सेठ गोविन्ददास बाबा ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि मूर्त्तिपूजा सनातन से चली आती है वा यह आधुनिक है। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बहुत थोड़े काल से यह प्रवृत्त हुई है। बुद्ध और जैन के पश्चात् बहुत से कम समझ मनुष्यों ने इसको चला दिया था नहीं तो संस्कृत के प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थों में इसका कहीं नाम तक नहीं पाया जाता। इसके पश्चात् स्वामी जी ने इसी सभा में अपना यौक्तिक व्याख्यान मूर्त्तिपूजा के खंडन में प्रारम्भ किया और वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा को महापाप सिद्ध कर दिया। समाप्ति पर सभापति ने स्वामी जी के गले में फूलों का हार डाला और सेठ छबीलदास लल्लूभाई इन्हें अपनी जोड़ी में सवार कराकर इनके आश्रम तक पहुँचा आये। (आर्यधर्मेन्द्र जीवन, रामविलास शारदा पृ० ११७)

मूर्त्तिपूजा

(बम्बई में पण्डितों से शास्त्रार्थ—मार्च, १८७६)

जब बम्बई के शास्त्रीगण सब प्रकार से तैयारी कर चुके तो स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया गया। उन्होंने तत्क्षण शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ का विषय वही पुराना विषय था कि मूर्त्तिपूजा वेदविहित है वा नहीं। शास्त्रार्थ की तिथि २७ मार्च, सन् १८७६ और स्थान भाई जीवन जी का हाल नियत हुआ।

नियत तिथि पर शास्त्रार्थ-सभा संगठित हुई। दर्शकों से हाल इतना खचाखच भर गया था कि खड़े होने तक को जगह न रही थी और बहुत से लोगों को घर लौट जाना पड़ा। स्वामी जी यथासमय बिना किसी आडम्बर के सभा में उपस्थित हो गये। पंडित रामलाल भी पधारे और बड़े दलबल और घोर गर्ज के साथ पधारे। उनके साथ अनेक स्थानीय शास्त्री और उनके शिष्य तथा

श्रद्धालु जन थे। शास्त्रार्थ-सभा में मध्यस्थ का आसन श्री भूभाऊ जी शास्त्री ने ग्रहण किया। शास्त्रार्थ उचित भावानुकूल और ऐसे ढंग से हुआ कि उसमें भाग लेने वालों के लिये वह प्रशंसनीय था।

पंडित गट्टूलाल जी ने भी शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया था, परन्तु वह सभास्थल में नहीं पधारे। उनके लाने के लिए गाड़ी भी भेजी गई परन्तु उन्होंने कहला भेजा कि हमको वमन हो गया है, हम नहीं आ सकते, हमारी ओर से पंडित रामलाल ही शास्त्रार्थ करेंगे।

स्वामी जी ने प्रथम ही पण्डित रामलाल से यह स्वीकार करा लिया कि आर्य्यों का मौलिक धर्म-ग्रन्थ वेद है और फिर उनसे वेद का कोई मन्त्र वा पंक्ति दिखाने को कहा कि जिसमें मूर्तिपूजा की ओर संकेत हो। पंडित रामलाल ने पुराण और स्मृतियों के प्रमाण उपस्थित किये। स्वामी जी ने कहा कि ये ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं, यदि कोई वेदमन्त्र स्मरण हो तो कहिये। इस पर पंडित रामलाल ने फिर मनुस्मृति के प्रमाण प्रस्तुत किये। स्वामी जी ने कहा कि इन प्रमाणों में आये हुए प्रतिमा और देव शब्दों से मूर्तिपूजा का कोई सम्बन्ध नहीं है और उनके यथार्थ अर्थ करके दिखाये और यह भी कहा कि पण्डित जी के बताए हुए ग्रन्थों में पण्डितों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के निमित्त बहुत से असत्य भाग प्रक्षिप्त कर दिये हैं। अतः वह उन ग्रन्थों का प्रमाण उक्त असत्य भागों को छोड़कर ही स्वीकार करते हैं। मौलिक धर्म्म-ग्रन्थ वेद में एक शब्द भी नहीं है, जिससे मूर्तिपूजा का प्रतिपादन होता हो, अन्य ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं हो सकते।

तदनन्तर पंडित रामलाल ने फिर भी स्मृतियों और पुराणों के प्रमाण उपस्थित किये। इस पर मध्यस्थ ने कहा कि पंडित जी ! स्वामी जी प्रश्न कुछ और करते हैं और आप उत्तर कुछ और ही देते हैं। यह सभा और पण्डितों का नियम नहीं। जैसे किसी से द्वारिका का मार्ग पूछा और उसने कलकत्ते का मार्ग बतलाया, ऐसा ही आपका यह शास्त्रार्थ है। अन्त में पंडित रामलाल ने कहा कि हम मूर्तिपूजा को वेद से सिद्ध नहीं कर सकते परन्तु मनुस्मृति, ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों के प्रमाणों से सिद्ध कर सकते हैं। इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हो गया।

शास्त्रार्थ-सभा साढ़े ग्यारह बजे रात्रि के विसर्जन हुई। शास्त्रार्थ के अन्त में अनेक लोगों ने भाई जीवन जी को धन्यवाद दिया कि उनके उद्योग से ऐसा चमत्कारिक परिणाम प्राप्त हुआ। सब लोग यह विश्वास लेकर घरों को लौटे कि आर्य्यों के मौलिक धर्मग्रन्थ वेद में मूर्त्ति-पूजा की कोई आज्ञा नहीं है।

(देवेन्द्रनाथ १। ३६५, लेखराम पृ० २४६-२५०)

मूर्त्तिपूजा

(पं० रामलाल शास्त्री से बम्बई में शास्त्रार्थ—२७ मार्च, १८७६)

जब स्वामी जी बम्बई से पूर्व की ओर जाने को उद्यत हुए उस समय यहाँ के पण्डितों ने स्वयं दूर रहकर रामलाल जी को जो नदियां शान्ति के विद्वान् थे, शास्त्रार्थ क्षेत्र में आने के लिए उद्यत किया। उसने एक हूकाभाई जीवन जी के घर में बहुत झगड़े के पश्चात् चैत सुदि संवत् १९३३ सोमवार के दिन शास्त्रार्थ आरम्भ किया। बहुत से भद्रपुरुष उस शास्त्रार्थ के समय उपस्थित थे। दोनों पक्षों की सम्मति से पण्डित बहुजाऊ जी शास्त्री घारीपुरी निवासी सभापति निश्चित हुए।

स्वामी जी—वेद के किस मन्त्र से मूर्त्तिपूजा का विधान है सो बतलाइये ?

पण्डित रामलाल जी पुराण और स्मृतियों के श्लोक बोलने लगे।

स्वामी जी—ये ग्रन्थ मानने के योग्य नहीं हैं। वेद का यदि कोई मन्त्र स्मरण हो तो कहिए—

पण्डित जी ने मनुस्मृति के वे श्लोक जिनमें प्रतिमा, देव शब्द थे, बोले।

स्वामी जी ने सब श्लोकों के यथार्थ प्रमाण सहित अर्थ कर दिये कि इनका मूर्त्ति-पूजा से कोई सम्बन्ध नहीं था।

पण्डित जी फिर और स्मृतियों और पुराणों के श्लोक बोलने लगे परन्तु अन्त तक वेद का कोई मन्त्र न बोले (तब मध्यस्थ जी बोले)।

मध्यस्थ पण्डित बहुजाऊ जी शास्त्री बोले कि रामलाल जी! स्वामी जी प्रश्न कुछ और करते हैं और आप उत्तर कुछ ही देते हैं। यह सभा और पण्डित का नियम नहीं है जैसे किसी ने किसी से द्वारिका का मार्ग पूछा और बतलाने वाले ने कलकत्ते का मार्ग बतलाया। इसी प्रकार का यह आपका शास्त्रार्थ है। ऐसा कहने पर भी रामलाल ने कोई वेद का प्रमाण नहीं दिया। तब सबकी सम्मति से सभा विसर्जित हुई और सभापति ने सब से स्पष्ट कह दिया कि "आज पण्डित रामलाल पाषाण-पूजन वेदोक्त सिद्ध न कर सके।"

इस प्रकार सत्य कह देने पर इस सत्यवक्ता शास्त्री को कितने ही स्वार्थी पण्डितों ने सताने में कोई कमी न रखी।

फिर चैत संवत् १९४० में इन्हीं पण्डित महोदय की मैनेजर वेदभाष्य तथा वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से भेंट हुई और वह सारी की सारी "देश हितैषी" पत्रिका चैत मास उक्त संवत् में प्रकाशित हो गई जो रोचकता से रहित नहीं है।

मैनेजर—आपने संस्कृत विद्या का बहुत दिन तक अध्ययन किया है और

आप इस भाषा के विद्वान् हैं और धर्मशास्त्र के ग्रन्थ देखे होंगे और आपके अति-रिक्त काशी आदि स्थानों में और भी बहुत विद्वान् हैं और स्वामी दयानन्द सर-स्वती भी बड़े विद्वान् हैं सो आप सब लोग जानते होंगे। फिर क्या कारण है कि आप लोगों और स्वामी जी की धर्म-सम्बन्धी विषयों में बातें नहीं मिलती हैं। स्वामी जी चारों वेदों को प्रामाणिक मानते हैं तब उनमें लिखी बातों को क्या आप लोग सिद्ध नहीं कर सकते ? जो स्वामी जी सत्य कहते तो आप लोगों को उनका कहना मानना और जो असत्य कहते हैं तो उनकी बातों का सभा करके खण्डन करना चाहिए सो आप लोग दोनों बातों में से एक भी नहीं करते इसका क्या कारण है ?

पण्डित रामलाल जी—स्वामी जी संन्यासी हैं, उनको किसी की पर्वाह नहीं। उन्होंने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन बहुत दिनों तक किया है। वे समर्थ हैं उनकी बुद्धि बड़ी प्रबल है। वे कहते सो शास्त्रानुसार सत्य ही कहते हैं परन्तु हमारी शक्ति नहीं कि उनका सामना कर सकें क्यों कि हम लोग गृहस्थी हैं, हमें अनेक बातों की अपेक्षा बनी रहती है फिर हम स्वामी जी की सी बातें कैसे कह सकते हैं ? संसार में और भी चर्चा फैली हुई है जो उसके विरुद्ध कहें तो हमारे कहने से भी कुछ भी न हो और लोग विमुख हो जावें, फिर आजीविका ही जाती रहे, तब निर्वाह कैसे होय ?

मैनेजर—इससे सिद्ध हुआ कि आप अधर्म की जीविका करते हैं क्योंकि आप जानते हैं कि यह बात मिथ्या है फिर उससे द्रव्योपार्जन करना अधर्म है। देखो ! स्वामी जी ने असत्य को छोड़कर सत्य ग्रहण किया तो थोड़े काल में उनका कितना मान हुआ है। इसी प्रकार जो आप लोग भी सत्य को स्वीकार करें तो वैसा ही सम्मान और नाम आप लोगों का क्यों न हो ?

पण्डित जी—क्या करें, सर्व संसार में ऐसी ही प्रवृत्ति हो रही है, उससे विरुद्ध हम लोग कहें तो कोई नहीं मानता। इस प्रकार तो स्वामी जी का ही निर्वाह हो सकता है, हम गृहस्थियों का नहीं। (पृष्ठ ८-९)

(लेखराम पृष्ठ २७२ से २७३)

मोक्ष एवं ईसा पर विश्वास

(फर्रुखाबाद में दो पादरियों से प्रश्नोत्तर—मई, १८७६)

एक दिन स्वामी से दो पादरियों की धर्म-विषय पर बातचीत हो रही थी। उनमें से एक पादरी का नाम लूकस था। दूसरा देशी ईसाई था।

लूकस--आपके मत से मोक्ष का क्या उपाय है ?

दया०—हमसे पादरी विल्सन ने भी यही प्रश्न किया था। उन्होंने कहा मोक्ष का साधारण मनुष्यों के लिये एक प्रकार का उपाय है अर्थात् ईश्वरप्राप्ति और ईसाइयों के लिए अन्य प्रकार का अर्थात् ईसा पर विश्वास लाना। हमने इस पर उनसे कहा था कि पहला ही उपाय ठीक है।

लूकस—मनुष्य ईसा पर विश्वास करने से ही मुक्ति पा सकता है, क्योंकि वह ईश्वर का पुत्र और मनुष्यों का परित्राता था और इसलिए ईश्वर ने उसे भेजा था। इसका प्रमाण यह कि ईसा ने बहुत से मृत पुरुषों को जिलाया था।

दया०—सत्य वेदोक्त धर्म में ईश्वर के अवलम्बन से ही मोक्ष होता है। महाभारत में लिखा है कि शुक्राचार्य ने संजीविनी विद्या से मृत पुरुषों को जिलाया था। अब हम शुक्राचार्य को ईश्वर का अवतार मानें या उन्हें ईश्वर का भेजा हुआ मानें। यदि उत्तम उपदेश देने से ही ईसा को परित्राता कहते हो तो बायबिल की अपेक्षा भगवद्गीता में अधिक उत्तम उपदेश हैं, इसलिए भगवद्-गीता के वक्ता श्री कृष्ण भी परित्राता थे कि उन्होंने उत्तम कर्म किये थे, तो शंकराचार्य अपेक्षाकृत उत्तमोत्तम कर्म कर गये हैं, इसलिये शंकराचार्य भी परि-त्राता हैं।

पादरी साहब इन बातों का कुछ उत्तर न दे सके।

स्वामी जी ने पादरी साहब से यह भी कहा था कि तुम्हारे देश में बहुत धन है इसलिये तुम्हारी परिश्रम में अनास्था हो गई है। अतएव तुम्हारी मध्यस्थ अवस्था नहीं रही है और तुम क्रमशः अवनति की ओर जा रहे हो। इसके पश्चात् स्वामी जी ने शरबतादि से सत्कार करके पादरी साहब को विदा किया।

(देवेन्द्रनाथ २।२)

विविध प्रश्नोत्तर

(ला० ब्रिजलाल साहब रईस, लखनऊ से प्रश्नोत्तर—सितम्बर-अक्तूबर १८७६)

प्रश्न—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र किस प्रकार हैं, कब से हैं और किसके बनाये हैं।

उत्तर—कर्मों की दृष्टि से चारों वर्ण ठीक हैं और लोकव्यवहार से ठीक नहीं हैं अर्थात् जो जैसा कर्म करे वैसा ही उसका वर्ण है। उदाहरणार्थ जो ब्रह्म-विद्या जाने वह ब्राह्मण, जो युद्ध करे वह क्षत्रिय, लेन-देन हिसाब-किताब करे वह वैश्य, जो सेवा करे वह शूद्र है। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय या शूद्र का काम करे तो ब्राह्मण नहीं सारांश यह कि वर्ण कर्मों से होता है, जन्म से नहीं। जन्म से चारों वर्ण

(वर्तमान अवस्था में) लगभग बारह सौ वर्ष से बने हैं। जिसने बनाये उसका नाम इस समय स्मरण नहीं परन्तु महाभारतादि से पीछे बने हैं।

प्रश्न २— क्या ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुए हैं?

उत्तर—इसका अभिप्राय यह है कि जैसे शरीर में मुख श्रेष्ठ है ऐसे सब वर्णों में ब्रह्म का जानने वाला श्रेष्ठ है। इसी कारण कह दिया कि ब्राह्मण मुख से हुआ इसी प्रकार और वर्णों का समझ लो।

प्रश्न ३—ब्राह्मण यज्ञोपवीत किस लिए रखते हैं?

उत्तर—यज्ञोपवीत केवल विद्या का एक चिह्न है।

प्रश्न ४—कोई कर्म करना चाहिए या नहीं?

उत्तर—उत्तम कर्म करना चाहिए।

प्रश्न ५—उत्तम कर्म कौन से हैं?

उत्तर—सत्य बोलना, परोपकारादि उत्तम कर्म हैं।

प्रश्न ६—सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर—जिह्वा से सत्य बोलना, जो मन में होवे वह वाणी से कहना या ऐसा विचार करके कहना जो कभी झूठ न हो।

प्रश्न ७—मूर्त्ति पूजना कैसा है?

उत्तर—बुरा है। कदापि मूर्ति-पूजन न करना चाहिए। इस मूर्ति-पूजा के कारण संसार में अन्धकार फैल गया।

प्रश्न ८—विना मूर्त्ति के किस का ध्यान करे और किस प्रकार?

उत्तर—जैसे सुख दुःख का ध्यान मन में होता है वैसे परमेश्वर का ध्यान मन में होना चाहिए, मूर्त्ति की कुछ आवश्यकता नहीं।

प्रश्न ९—क्या कर्म करना चाहिए?

उत्तर—दो समय सन्ध्या करे और सत्य बोले और जो श्रेष्ठ कर्म परोपकार के हों वे करें।

प्रश्न १०—सन्ध्या दो समय करनी चाहिए या तीन समय?

उत्तर—केवल दो समय प्रातः-सायं, तीन समय नहीं।

प्रश्न ११—बार बार या प्रत्येक बार मन्त्र जपना या परमेश्वर का नाम लेना चाहिए या नहीं और जैसे ब्राह्मण लाख दो लाख मन्त्र या परमेश्वर के नाम का जाप और पुरश्चरण करते हैं यह ठीक है या नहीं है?

उत्तर— पहचानना चाहिए। जाप और पुनश्चरण करना कुछ आवश्यक नहीं।

प्रश्न १२—परमेश्वर का कोई और रूप है या नहीं ?

उत्तर—उसका कोई रूप और रङ्ग नहीं है, वह अरूप है और जो कुछ इस संसार में दिखलाई देता है उसी का रूप है क्योंकि केवल एक अर्थात् वही एक सबका बनाने और उत्पन्न करने वाला है।

प्रश्न १३—ईश्वर संसार में दिखलाई क्यों नहीं देता है ?

उत्तर—यदि दिखलाई देता तो कदाचित् सब कोई अपना मनोरथ पूर्ण करने को कहते और उसे तंग करते। दूसरे जिन तत्त्वों से मनुष्य का यह शरीर बना है उनसे उसका देखना असम्भव है। तीसरे जिसने जिसको उत्पन्न किया उसको वह क्योंकर देख सकता है ?

प्रश्न १४—जब दिखाई नहीं देता तो किस प्रकार उसको पहचाने ?

उत्तर—दिखलाई तो देता है अर्थात् यह मनुष्य, पशु, वृक्षादि सब वस्तुए जो संसार में दिखलाई देती हैं उन सबका कोई एक अर्थात् वही एक बनाने वाला प्रतीत होता है, यही उसका देखना है और जैसे सुख-दुःख पहचाना जाता है वैसे ही उसको पहचाने।

प्रश्न १५—ब्रह्म हम में और सब में है या नहीं ?

उत्तर—सब में है और हम में भी है।

प्रश्न १६—किस प्रकार विदित हो ?

उत्तर—जिस प्रकार दुःख-सुख का प्रभाव मन में विदित होता है उसी प्रकार वह भी विदित हो सकता है।

प्रश्न १७—सब स्थानों पर एक समान है या न्यूनाधिक ?

उत्तर—सर्वत्र एक समान है परन्तु यह बात है कि जितना जिसके आत्मा में उस चेतन का प्रकाश है अर्थात् जिसको जितना ज्ञान है उतना उसको अनुभव होता है।

प्रश्न १८—देव किसको कहते हैं ?

उत्तर— जो मनुष्य विद्यावान् और बुद्धिमान् पंडित हो उसको देव कहते हैं।

प्रश्न १९—रामलीला देखना दोष है ?

उत्तर—हां दोष है। हजार हत्या के समान दोष है और इसी प्रकार मूर्त्ति-पूजा करना हजार हत्या के समान पाप है। क्योंकि विना आकृति के प्रतिबिम्ब

नहीं उतर सकता और जबकि उसकी आकृति नहीं तो मूर्त्ति कैसी ? यदि किसी का फोटोग्राफ से या और किसी प्रकार यथार्थ प्रतिबिम्ब उतारकर संस्मरण को और देखने को सम्मुख रखा जाये तो वह ठीक है परन्तु उसकी अर्थात् ब्रह्म की मूर्ति और आकृति बनाना और प्रतिलिपि की प्रतिलिपि बनाकर कुछ का कुछ कर देना नितान्त अशुद्ध और अनुचित है।

पश्न २०—संस्कृत भाषा कब से है और क्यों उसको अच्छा कहते हैं ?

उत्तर—संस्कृत भाषा सदा से है और अत्यन्त शुद्ध है। इसके समान कोई भाषा अच्छी नहीं है। उदाहरणार्थ यदि, फारसी और अंग्रेजी में केवल "ब" प्रकट किया चाहें तो शुद्ध पकट नहीं किया जा सकता अर्थात् फारसी में "बे" और अंग्रेजी में "बी" है परन्तु जिसमें और कोई सम्मिलित न हो यह केवल संस्कृत भाषा में ही प्रकट करने का गुण है।

प्रश्न २१— वेद में परमेश्वर की स्तुति है तो क्या उसने अपनी प्रशंसा लिखी ?

उत्तर—जैसे माता पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता, पिता और गुरु की सेवा करो, उनका कहा मानो। उसी प्रकार भगवान् ने सिखाने के लिये वेद में लिखा है।

प्रश्न २२—भगवान् का जब स्वरूप और शरीर नहीं तो मुख कहाँ से आया कि जिससे वेद कहा ?

उत्तर—भगवान् ने चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के हृदय में प्रकाश करके वेद बताया।

प्रश्न २३—अब विदित हुआ कि चार वेद उन चार ऋषियों के बनाये हुए हैं।

उत्तर—नहीं, नहीं, भगवान् के वेद बनाये और कहे हैं क्योंकि वे चारों कुछ पढ़े न थे और न कुछ जानते थे। उनके द्वारा आप ही कहे हैं।

प्रश्न २४—भगवान् ने उनके हृदय में किस प्रकार आकर वेद कहा ?

उत्तर—जैसे कोई मनुष्य पित्त वा सन्ताप में आप ही आप बोलने लगता है उसी प्रकार उस भगवान् ने उन चारों के घट में जिह्वा में प्रकाश करके कहा और उन्होंने उसकी शक्ति से विवश होकर कहा। इसलिये प्रकट है कि भगवान् ने वेद कहे हैं।

प्रश्न २५—जीव एक है या अनेक ?

उत्तर—जीव का प्रकार एक है और जाति अर्थात् योनियाँ अनेक हैं।

उदाहरणार्थ मनुष्य की एक जाति है और पशु की दूसरी जाति है। इसी प्रकार और जातियाँ भी समझ लो।

प्रश्न २६—यह जीव प्रत्येक देह में जाता है और छोटा-बड़ा हो जाता है।

उत्तर—जैसे जल में जो रंग मिला दोगे वैसा ही जल हो जावेगा। इसी प्रकार जिस देह में यह जीव जावेगा वैसा ही उसका रूप, रंग और छोटा-बड़ा देह होगा परन्तु जीव सबका एक सा है जैसा चींटी का वैसा ही हाथी का।

(लेखराम पृष्ठ २७७ से २८०)

सृष्टयुत्पत्ति आदि

(पादरी पार्कर साहब से मुरादाबाद में शास्त्रार्थ—नवम्बर, १८७६)

पहली बार स्वामी जी सन् १८७६ में मुरादाबाद पधारे। यहां स्वामी जी का पादरी पार्कर साहब से कई दिन तक प्रातःकाल लिखित शास्त्रार्थ होता रहा।

साहू श्यामसुन्दर जी रईस मुरादाबाद ने वर्णन किया कि पादरी पार्कर साहब का शास्त्रार्थ राजा जयकिशनदास साहब बहादुर की कोठी पर कम से कम १५ दिन तक होता रहा। मैं नित्य जाया करता था। कुँवर परमानन्द, रूपकिशोर अध्यापक मिशन स्कूल, मास्टर हरिसिंह तथा और भी कई सज्जन जाया करते थे। अन्तिम दिन का विषय था कि सृष्टि कब उत्पन्न हुई। पादरी साहब का कथन था कि सृष्टि पांच हजार वर्ष से उत्पन्न हुई और स्वामी जी इसका खंडन करते थे।

इसी समय में ब्रिटिश इण्डियन ऐसोसियेशन कमेटी की सभा उस कोठी के एक कमरे में हुआ करती थी। उस अन्तिम दिन स्वामी जी दूसरे कमरे में जाकर एक बिल्लौर का पत्थर उठाकर लाये कि आप लोग विज्ञान जानते हैं, इसको विज्ञान से सिद्ध करें कि कितने वर्ष में यह पत्थर इस रूप में आया। अन्त में खोज से यही सिद्ध हुआ कि वह कई लाख वर्ष में बना है। फिर कहा कि जब सृष्टि नहीं थी तो यह पत्थर कैसे बन गया? जिस पर पादरी साहब ने यह निकम्मा बहाना किया कि हम मनुष्य की उत्पत्ति को पाँच हजार वर्ष कहते हैं। इस पर स्वामी जी ने कहा कि जब सृष्टि की उत्पत्ति की चर्चा है तो सृष्टि के भीतर मनुष्यादि सब आ गये। इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हुआ था। पादरी साहब ने इस शास्त्रार्थ का वृत्तान्त किसी समाचारपत्र में भी प्रकाशित कराया था परन्तु उसका नाम मुझे ज्ञात नहीं और यह भी सुना कि पादरी साहब ने एक चिट्ठी अमरीका भेजी कि हमने आजतक ऐसा विद्वान् पंडित कोई नहीं देखा।

बाबू रूपकिशोर जी ने वर्णन किया कि रेवरेण्ड डब्ल्यू पार्कर साहब और स्वामी जी के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ था वह मैंने लिखा था, परन्तु खेद है कि मेरे पुत्र के प्रमाद से वे कागज नष्ट हो गये। अब जो कण्ठस्थ मुझे ज्ञात है वह लिखवाता हूँ। इस शास्त्रार्थ में तीन अंग्रेज सज्जन उपस्थित थे। एक पादरी पार्कर, दूसरे मिस्टर बेली साहब और तीसरे एक और पादरी साहब। इनके अतिरिक्त डिप्टी इमदाद अली, बाबू रामचन्द्र बोस, कुंवर परमानन्द, मास्टर हरिसिंह और इसी प्रकार ४०-५० मनुष्य थे। शास्त्रार्थ लिखा जाता था। १४-१५ दिन शास्त्रार्थ होता रहा। बेली साहब अब अलीगढ़ में रजिस्ट्रार हैं। प्रति-दिन प्रातः दो तीन घंटे बैठते थे।

अन्त में एक बात मुझे स्मरण है कि स्वामी जी ने सिद्ध कर दिया था कि मसीह मूर्तिपूजा की शिक्षा देता था क्योंकि ईश्वर को किसी के द्वारा मानता तथा किसी के द्वारा इच्छापूर्ति की प्रार्थना करता है वह मूर्तिपूजक है और हम मूर्तिपूजक नहीं हैं। (लेखराम पृष्ठ ४४१)

विविध प्रश्नोत्तर

(अम्बहटा निवासी मुंशी चंडीप्रसाद के प्रश्न तथा स्वामी दयानन्द जी के उत्तर)

१५ मार्च, १८७७

प्रश्न—वेद शास्त्र के अनुसार हिन्दुओं को किस किस की उपासना करनी चाहिए और जन्मदिवस से लेकर मृत्यु पर्यन्त क्या-क्या काम करने चाहिए।

उत्तर—नारायण के अतिरिक्त और किसी की उपासना नहीं करनी चाहिए। विद्या प्राप्त करके मन की शुद्धि करनी चाहिए। और सत्य व्यवहार पूर्वक आजीविकार्थ तथा अन्य सांसारिक कार्य करने उचित हैं।

प्रश्न—प्रायः हिन्दू और उदाहरणार्थ कायस्थ क्षत्रिय आदि मद्य और शिकार खाते-पीते हैं सो यह काम भी करने उचित हैं वा नहीं ?

उत्तर—मद्य और शिकार का खाना-पीना न चाहिए और बुद्धि के अनु-सार भी प्राणधारी का खाना अत्याचार में सम्मिलित है और वेद तथा शास्त्र की दृष्टि से भी निषिद्ध है।

प्रश्न—भूत, चुड़ैल, जिन्न और परी की छाया कहीं कुछ है या नहीं ? क्योंकि लोग प्रायः ऐसी घटना होने पर मुल्लाओं, स्यानों और कब्रों आदि से उनको भगाने की इच्छा करते हैं।

उत्तर—भूत और चुड़ैल और जिन्न और परी की छाया कहीं कुछ नहीं है, यह लोगों का भ्रममात्र है। यदि ये होते तो फिरंगियों की छाया अवश्य होती।

प्रश्न—शरीर के नष्ट होने पर यह आत्मा कहाँ जाती है ?

उत्तर— मृत्यु के पश्चात् आत्मा शरीर से पृथक् होकर 'यमराज' अर्थात् वायु के यहाँ चली जाती है।

प्रश्न—मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म होता है या नहीं और स्वर्ग और नरक का क्या वर्णन है ? कोई ऐसी बुद्धिगम्य युक्ति नहीं है कि जिससे आवागमन तथा स्वर्ग और नरक का वृत्तान्त भली प्रकार विदित हो जाय; कारण यह है कि जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त किसी को विदित नहीं हुआ।

उत्तर पुनर्जन्म अवश्य होता है और स्वर्ग और नरक भी सर्वत्र विद्यमान है। जिस प्रकार मनुष्य बुद्धि के द्वारा पहचान सकता है कि पृथिवी और आकाश तथा मनुष्यों और पशुओं को उत्पन्न करने वाला परमात्मा है; इसी प्रकार विद्या प्राप्ति के द्वारा वह स्वर्ग और नरक की परिस्थिति को यहाँ जान सकता है।

प्रश्न—ईश्वर ने सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया ? और उत्पन्न करने में उसका क्या उद्देश्य था ?

उत्तर—जैसे आँख का काम है देखना और कान का काम है सुनना और देखने या सुनने में आंख या कान का कोई उद्देश्य नहीं होता परन्तु वह तो उसका प्राकृतिक स्वभाव ही है। इसी प्रकार सृष्टि की रचना करना नारायण का काम ही है और उत्पन्न करने और उसके संहार करने में उसका उद्देश्य कोई नहीं है।

प्रश्न—आवागमन कब तक होता रहेगा ?

उत्तर—इस विषय में तुम्हारा सन्तोष सत्यार्थप्रकाश तथा वेदभाष्य के एक दो ग्रन्थ पढ़ने पर ही हो सकेगा मौखिक रूप से बतलाने पर तुम्हारा सन्तोष नहीं हो सकता।

प्रश्न—ईश्वर ने सृष्टि कब उत्पन्न की थी ? और चारों युगों अर्थात् सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग में से प्रत्येक की कितनी-कितनी अवधि है।

उत्तर—ऐसी बातें वेदों में भली प्रकार सिद्ध हो सकती हैं। प्रत्येक युग की अवधि भिन्न है, वेदशास्त्र के भाष्य से तुम स्वयं देख लोगे।

प्रश्न—स्त्री और पुरुष का विवाह कितनी आयु में करना चाहिए और उसकी क्या विधि होनी चाहिए ?

उत्तर—विवाह के समय पुरुष की आयु कम से कम २४ वर्ष और स्त्री की आयु १६ वर्ष होनी चाहिए।…… …………और विवाह स्त्री-पुरुष को अपनी

रुचि के अनुसार करना चाहिए।.........नहीं तो माता और पिता का पसन्द किया हुआ सम्बन्ध स्त्री-पुरुष को कब पसन्द हो सकता है ?

प्रश्न—वेद के दृष्टिकोण से विधवा स्त्री अथवा पुरुष का पुनः विवाह होना उचित है या नहीं ? और यह कि अपनी स्त्री के जीवित रहते अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरा और तीसरा विवाह करने से पुरुष को कुछ दोष तो नहीं लगता ?

उत्तर—विधवा स्त्री का पुनर्विवाह होना चाहिए और अपनी स्त्री के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का पात्र नहीं है; परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसको अधिकार है कि वह पुनः विवाह चाहे करे या न करे। ऐसा ही अधिकार विधवा स्त्री को भी होना चाहिए।

प्रश्न—गुरु किसको बनाना चाहिए और वह कितने गुणों से युक्त हो ?

उत्तर—गुरु पिता आदि को बनाना चाहिए। और उनकी आज्ञा का पालन करे और उनकी प्रसन्नता का अभिलाषी रहे।

प्रश्न—यदि कोई ब्राह्मण या वैश्य या कोई अन्य व्यक्ति हिन्दुओं के धर्म में से हानि और लाभ को समझे बिना अथवा किसी मनुष्य के कहने सुनने से मुसलमान या ईसाई हो जावे और उसके पश्चात् यदि वह व्यक्ति अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो उसको अपनी जाति में सम्मिलित कर लेना चाहिए या नहीं ?

उत्तर—निस्सन्देह, यदि वह अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो समाज को चाहिए कि उसको अपनी बिरादरी में सम्मिलित कर लें।

प्रश्न—ईश्वर किस स्थान पर रहता है क्योंकि प्रकटरूप में तो उसका कोई रंग रूप किसी की दृष्टि में आता नहीं।

उत्तर—नारायण सर्वव्यापक है अर्थात् सर्वत्र विद्यमान तथा द्रष्टा है। जो कोई मनुष्य ज्ञान से अपने हृदय-दर्पण को शुद्ध रखता है वह उसे देख सकता है। वस्तुतः तो अज्ञानियों की दृष्टि से वह दूर है।

प्रश्न—ब्रह्मा के चार मुख थे या नहीं ? और वेद को ब्रह्मा ने किसी कागज पर लिखा था या उसको वे पूरे पूरे चारों वेद कण्ठस्थ थे ?

उत्तर—ब्रह्मा के चार मुख नहीं प्रत्युत चारों वेद उसके मुख में (कण्ठस्थ) थे। यदि उसके चारों ओर चार मुख होते तो उसको सोना और विश्राम करना कठिन हो जाता। मूर्खों ने चारों वेद कंठस्थ थे इसके स्थान पर चार मुंह कल्पित कर लिए।

प्रश्न—ईश्वर ने जो पृथिवी तथा आकाश, सूर्य तथा नक्षत्र दिन तथा रात, मनुष्य तथा पशु और भिन्न-भिन्न प्रकार की भिन्न-भिन्न वर्णों और आकृतियों की वस्तुयें बनायी हैं वे किसी सामग्री या मसाले से बनायीं हैं या और किसी प्रकार बनायी हैं ?

उत्तर—नारायण को किसी मसाले की आवश्यकता नहीं है। वह तो स्वयं निर्विवाद रचयिता है और ये सारी वस्तुएं उसने माया या प्रकृति से बनाई है।

प्रश्न—आपके कथन से विदित हुआ कि ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे और न किसी का कोई वर्ण था परन्तु कर्म के अनुसार वर्ण निश्चित हुए अर्थात् जो वेद शास्त्र पढ़कर उसके अनुसार उपदेश करता था वह ब्राह्मण, और जो बाहुबल में वीर और प्रजा का पालन करता था वह क्षत्रिय और जो व्यवहार अर्थात् कृषि करता था वह वैश्य और जो मजदूरी चाकरी करता था वह शूद्र कहलाता था। इस लेख के बाद यह बात अवश्य माननीय हो जाती है कि यदि किसी चमार या भंगी या कसाई जिसने विद्याप्राप्त की तो वह भी पण्डित के तुल्य है। अबप्रश्न यह उठता है कि यदि वह चमार या भंगी या कसाई, जिसने विद्या प्राप्त की है यह चाहे कि मैं किसी ब्राह्मण के घर में अपना विवाह करूँ तो ब्राह्मण को भी उचित है या नहीं कि अपना कन्या उसको विवाह दे ?

उत्तर—यदि इन छोटे व्यवसाय करने वालों में से किसी ने विद्या प्राप्त को हो तो वह वस्तुतः पण्डित के तुल्य है परन्तु एक कारण कि बहुत समय तक (अवर) व्यवसायी मनुष्यों में उसका पालन होना आवश्यक है कि नीचता की गन्ध उसके मस्तिष्क से न जावे तो उसका ब्राह्मण की कन्या से सम्बन्ध होना उचित नहीं।

प्रश्न—हिन्दुओं में विवाह के पश्चात् जो मुकाबले अर्थात् गौने की प्रथा प्रचलित है, वह भी होनी चाहिए या नहीं क्योंकि और जातियों में यह प्रथा बिल्कुल नहीं है; अर्थात् मुसलमान और ईसाई इस प्रथा को नहीं मानते।

उत्तर—यह प्रथा व्यर्थ है; यदि वेद में युक्ति-युक्त कारणों से इस प्रथा का उल्लेख होता तो उसका करना आवश्यक हो सकता था। जिन जातियों में यह प्रथा नहीं है उनमें क्या बुराई है ?

प्रश्न—दशहरा, होली, दीवाली और हिन्दुओं के त्यौहारों में जो प्रथायें अब प्रचलित है वे भी ठीक हैं या नहीं ?

उत्तर—होली और दीवाली आदि उचित रूप से मनानी चाहिए।

प्रश्न—स्त्रियों को भी विद्या प्राप्त करनी चाहिए या नहीं ?

उत्तर—स्त्रियों को विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए। क्योंकि विना विद्या के मनुष्य की बुद्धि पशु की बुद्धि के तुल्य होती है।

प्रश्न—हिन्दू लोग जो पण्डितों से जन्मपत्र लिखवाते हैं और पण्डित लोग भी इन कुंभ, धन, मकर, की राशियों का बृत्तान्त शास्त्रीय पत्रे से जानकर मंगल, सूर्य और शनि की खोटी दशा और हानि लाभ बतलाते हैं जिनमें से प्रायःबातें तो ठीक निकलती हैं बहुत सी अशुद्ध होती हैं इसका क्या कारण है ?

उत्तर—यह जन्मपत्र नहीं प्रत्युत रोगपत्र है। पण्डित किसी को खोटी दशा के जप करने के लिये अवश्य कुछ न कुछ बतलाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बातों को नहीं माना करते।

प्रश्न— भारत के लोग स्त्रियों को इस प्रयोजन से कि वे व्यभिचरिणी न हों परदे में रखते हैं और ईसाई अपनी स्त्रियों को परदे में नहीं रखते और स्थान-स्थान पर भ्रमण कराते हैं। इतना होने पर भी भारत की स्त्रियाँ ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी दिखाई देती हैं। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—स्त्रियों को परदे में रखना आजन्म कारागार में डालना है। जब उनको विद्या होगी वह स्वयं अपनी विद्या द्वारा बुद्धिमती होकर प्रत्येक प्रकार के दोषों से रहित और पवित्र रह सकती हैं।............(लेखराम पृ० २८७, २८८)

॥ ओं खम्ब्रह्म ॥

मेला चांदापुर

सत्यधर्मविचार

(अनेक विषयों पर विचार)

१९-२० मार्च, १८७७ में (संवत् १९३७ छपे के अनुसार) जिसको मुन्शी बख्तावर सिंह एडीटर आर्यदर्पण ने शोधकर भाषा और उर्दू में वैदिक यन्त्रालय काशी में अपने प्रबन्ध से छापकर प्रकाशित किया था।

धर्मचर्चा ब्रह्मविचार मेला चांदापुर□ कि जिसमें बड़े बड़े विद्वान्×

□ यहां यह मेला मुन्शी प्यारेलाल साहब की ओर से प्रतिवर्ष हुआ करता है।

× इस धर्मचर्चा में आर्य्यों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मुन्शी इन्द्रमणि जी, ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहब, पादरी नोबिल साहब, पादरी पार्कर साहब और पादरी जान्सन साहब और मुसलमानों की ओर से मौलवी मोहम्मद कासिम साहब, सैयद अब्दुल मंसूर साहब विचार के लिये आये थे।

आर्य्यों, ईसाइयों **और** मुसलमानों की ओर से एक सत्य के निर्णय के लिये इकट्ठे हुए थे; सज्जन पाठकगणों के हितार्थ मुद्रित किया जाता है कि जिसमे प्रत्येक मतों का अभिप्राय सब पर प्रकाशित हो जावे। सब सज्जनों को; किसी मत के क्यों न हों; उचित है कि पक्षपातरहित होकर इसको सुहृद्‌भाव से देखें।

विदित हो कि यह मेला दो दिन रहा। मेले के आरम्भ से पूर्व कई लोगों ने स्वामी जी के समीप जाकर कहा कि आर्य और मुसलमान मिल के ईसाइयों का खण्डन करें तो अच्छा है। इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि यह मेला सत्य **और** असत्य के निर्णय के लिये किया गया है। इसलिये हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़कर प्रीतिपूर्वक सत्य का निश्चय करें। किसी से विरोध करना कदापि योग्य नहीं।

इसके पश्चात् विचार का समय नियत किया गया। पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते और यही विज्ञापन में भी छापा गया था। इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि हम इस प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम पांच और अधिक से अधिक आठ दिन तक रहेगा। क्योंकि इतने दिनों में सब मतों का अभिप्राय अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकता है। जब इस पर वे लोग प्रसन्न न हुए तब **मुन्शी इन्द्रमणि जी** ने कहा कि स्वामी जी ! आप निश्चिन्त रहें। सच्चा मत एक दिन में प्रकट हो जावेगा। फिर निम्नलिखित पांच प्रश्नों पर विचार करना सब ने स्वीकार किया।

पहले दिन की सभा

मुन्शी प्यारेलाल साहब ने खड़े होकर सबसे पहले कहा—

"प्रथम ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्य्यामी है। हम लोगों के बड़े भाग्य हैं कि उसने हम सब को ऐसे राजप्रबंध समय में उत्पन्न किया कि जिसमें सब लोग निर्विघ्नता से निर्भय होकर मत-मतान्तरों का विचार कर सकते हैं। धन्य है इस आज के दिन को और बड़े भाग्य हैं इस भूमि के कि ऐसे सज्जन पुरुष और ऐसे ऐसे विद्वान् मतमतान्तरों के जानने वाले यहाँ सुशोभित हुए हैं। आशा है कि सब विद्वान् अपने अपने मतों की वार्ताओं को कोमल वाणी से कहेंगे कि जिससे सत्य और असत्य का निर्णय होकर मनुष्यों की सत्य मार्ग में प्रवृत्ति हो जावेगी।"

इसके पश्चात् जब मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से पाँच-पाँच मनुष्य और आर्य्यों की ओर से **स्वामी जी** और **मुन्शी इन्द्रमणि जी** दो ही विचार के लिये नियत किये गये तब मौलवियों और पादरियों ने हठ किया कि आर्य्यों की ओर से भी पाँच मनुष्य होने चाहियें। इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि आर्य्यों की

ओर से हम दो ही बहुत हैं। तब मौलवियों ने पंडित लक्ष्मण शास्त्री जी का नाम अपने ही आप पादरियों से लिखवाना चाहा। तब स्वामी जी ने उनसे यह कहा कि आप लोगों को अपनी अपनी ओर के मनुष्यों के लिखवाने का अधिकार है; हमारी ओर का कुछ नहीं। और पण्डित से यह कहा कि आप नहीं जानते ये लोग हमारे और तुम्हारे बीच विरोध कराके आप तमाशा देखना चाहते हैं। इस बात के कहने पर भी एक मौलवी ने पंडित जी का हाथ पकड़ के उनसे कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवा दो। इनके कहने से क्या होता है। तिस पर स्वामी जी ने कहा कि अच्छा जो सब आर्य्य लोगों की सम्मति हो तो इनका भी नाम लिखवा दो नहीं तो केवल आप लोगों के कहने से इनका नाम नहीं लिखा जावेगा। फिर एक मौलवी साहब उठकर बोले कि सब हिंदुओं से पूछा जावे कि इन दोनों के नाम लिखाने में सब की सम्मति है वा नहीं। इस पर स्वामी जी ने कहा कि जैसे आपको सिवाय फिर्के सुन्नत जमात के अहलेशिया आदि फिर्कों ने सम्मति करके नहीं बिठलाया और जैसे कि पादरी साहब को रोमन कैथोलिक फिर्कों ने नियत नहीं किया; ऐसे ही आर्य्य लोगों में भी बहुत सों की हमारे बिठलाने में सम्मति और बहुत सों की असम्मति होगी। परन्तु आप लोगों को हमारे बीच गड़बड़ मचाने का कुछ अधिकार नहीं है। मुन्शी इन्द्रमणि जी ने कहा कि हम सब आर्य्य लोग वेदादि शास्त्रों को मानते हैं और पण्डित जी भी इन्हीं को मानते हैं। जो किसी का मत आर्य्य लोगों से वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध हो तो चौथा पन्थ नियत करके भले ही बिठला दीजियेगा।

इन बातों से मौलवियों का यह अभिप्राय था कि ये लोग आपस में झगड़ें तो हम तमाशा देखें। पंडित जी का नाम लिखना आर्य्य लोगों ने योग्य न समझा। फिर मौलवी लोग नमाज पढ़ने को चले गये और जब लौटकर आये तब उनमें से मौलवी मुहम्मद कासिम साहब ने कहा कि प्रथम मैं एक घंटे तक उन प्रश्नों के सिवाय और कुछ अपने मत के अनुसार कहना चाहता हूँ। उसमें जो किसी की कुछ शंका होगी तो उसका मैं समाधान करूँगा। इसको सब ने स्वीकार किया। मौलवी साहब के कथन का तात्पर्य यह है—

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् यह कहा कि जिस-जिस समय में जो-जो हाकिम हो उसी की सेवा करनी उचित है। जैसे कि इस समय जो गवर्नर है उसी की सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं और जिसकी आज्ञापालन का समय व्यतीत हो गया न कोई उसकी सेवा करता है और न उसकी आज्ञा को मानता है। और जैसे जब कोई कानून व्यर्थ हो जाता है तो उसके अनुसार कोई नहीं चलता परन्तु जो कानून उसकी जगह

नियत किया जाता है उसी के अनुसार सब को चलना होता है। तो इन्हीं दृष्टांतों के समान जो-जो अवतार और पैगम्बर पूर्व समय में थे और जो-जो पुस्तकें तौरेत, जबूर, बाइबिल उनके समय में उतरी थीं अब उनके अनुसार न चलना चाहिये। इस समय के सब से पिछले पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब हैं। इस लिये उनको पैगम्बर मानना चाहिये। और जो ईश्वरवाक्य अर्थात् कुरान उनके समय में उतरा है उस पर विश्वास करना चाहिये। और हम श्री राम और श्री कृष्ण आदि और ईसामसीह की निन्दा नहीं करते। क्योंकि वे अपने-अपने समय में अवतार और पैगम्बर थे। परन्तु इस समय तो हजरत मुहम्मद साहब का ही हुकुम चलता है; दूसरे का नहीं। जो कोई हमारे मजहब वा कुरानशरीफ वा हजरत मुहम्मद साहब को बुरा कहेगा, वह मारे जाने के योग्य है।

पादरी नोबिल साहब—मुहम्मद साहब के पैगम्बर और कुरान के ईश्वरीय वाक्य होने में सन्देह है क्योंकि कुरान में जो-जो बातें लिखी हैं सो-सो बाइबिल की हैं। इसलिये कुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता। और हजरत ईसामसीह के अवतार होने में कुछ सन्देह नहीं। क्योंकि उसके व्याख्यान से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सत्यमार्ग बतलाने वाला था। केवल उसके व्याख्यान से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है और उसने चमत्कार भी दिखलाये थे।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—हम हजरत ईसा को अवतार तो मानते हैं और बाइबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं परन्तु ईसाइयों ने उसमें बहुत कुछ घटत-बढ़त कर दी है इसलिये यह वही मूल नहीं है। और जो कि उसका कुरान ने खण्डन भी कर दिया है इसलिये वह विश्वास के योग्य नहीं रही। और हमारे हजरत पैगम्बर साहब का अवतार सबसे पिछला है, इसलिये हमारा मत सच्चा है।

फिर और मौलवियों ने बाइबिल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई और कहा कि देखिये आप ही लोगों ने लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता।

पादरी नोबिल साहब—जिस मनुष्य ने यह लिखा है वह सत्यवादी था। जो उसने लेखक-भूल को प्रसिद्ध कर दिया तो कुछ बुरा नहीं किया। और हम लोग सत्य को चाहते हैं असत्य को नहीं, इसलिये हमारा मत सत्य है।

मौलवी मुहम्मद कासिम—यह तो ठीक है कि कुछ बुरा नहीं किया परन्तु जब कि किसी पुस्तक में वा दस्तावेज में एक भी बात झूठ लिखी हुई विदित हो जावे तो वह पुस्तक कदाचित् माननीय नहीं रहती और न वह दस्तावेज ही अदालत में स्वीकार हो सकता है।

पादरी नोबिल साहब—क्या कुरान में लेखकदोष नहीं हो सकता। इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं। और जो हम सत्य ही को मानते हैं और सत्य ही की खोज करते हैं इस कारण उस लेखक-भूल को हमने स्वीकार कर लिया। और तुम्हारे कुरान में बहुत घटत-बढ़त हुई। जिसके प्रमाण में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा और सूरतों के प्रमाण दिये।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—आप बड़े सत्य के खोजी हैं! (मुख बनाकर) जो आप सत्य ही को स्वीकार करते हैं तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो?

पादरी नोबिल साहब—हम तीन ईश्वर नहीं मानते। वे तीनों एक ही हैं अर्थात् केवल एक ईश्वर से ही प्रयोजन है। ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरता दोनों थीं। इस कारण वह दोनों व्यवहारों को करता है। अर्थात् मनुष्य के आत्मा से मनुष्यों का व्यवहार और ईश्वर के आत्मा से ईश्वर का व्यवहार अर्थात् चमत्कार दिखलाना।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—वाह वाह! एक घर में दो तलवार क्योंकर रह सकती हैं? यह कहना पादरी साहब का अत्यन्त मिथ्या है। उसने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूं। तुम हठ से उसको ईश्वर नाते हो।

पादरी नौबिल साहब—एक आयत अंजील को पढ़ी और कहा कि यह एक आयत है जिसमें मसीह ने अपने आपको ईश्वर कहा है और कई एक चमत्कार भी दिखलाये हैं। इससे उसके ईश्वर होने में कोई संदेह नहीं हो सकता।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—जो वह ईश्वर था तो अपने आपको फाँसी से क्यों न बचा सका?

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब—कुरान में कई एक आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया और कहा कि हुकुम का खंडन हो सकता है; समाचार का नहीं हो सकता। सो आप के कुरान में समाचारों का खंडन है। पहिले बैतूल-मुकद्दस की ओर शिर नमाते थे फिर काबे की ओर नमाने लगे। और कई आयतों का अर्थ भी सुनाया और कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाये विना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती। और तुम्हारे कुरान में बाइबिल का और ईसामसीह का मानना लिखा है। तुम लोग क्यों नहीं मानते हो?

ऐसी ही बातों के होते होते सन्ध्या हो गई।

दूसरे दिन की सभा

प्रातःकाल के साढ़े सात बजे सब लोग आये, और वे पाँच प्रश्न कि जो स्वीकार हो चुके थे पढ़े गये। **वे पांच प्रश्न ये हैं**—

१—सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज से, किस समय और किसलिये बनाया ?

२—ईश्वर सब में व्यापक है वा नहीं ?

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?

५—मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

इसके पश्चात् कुछ देर तक यह बात आपस में होती रही कि एक दूसरे को कहता था कि पहले वह वर्णन करे। तदनन्तर **पादरी स्काट साहब** ने पहले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया और यह भी कहा कि यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं। मेरी समझ में ऐसे प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है। परन्तु जब कि सब की सम्मति है तो मैं इसका उत्तर देता हूँ—

पादरी स्काट साहब—यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस चीज से बनाया है। परन्तु इतना हम जान सकते हैं कि अभाव से भाव में लाया है। क्योंकि पहले सिवाय ईश्वर के दूसरा पदार्थ कुछ न था। उसने अपने हुकुम से सृष्टि को रचा है। यद्यपि यह भी हम नहीं जान सकते कि उसने कब इस संसार को रचा परन्तु उसका आदि तो है। वर्षों की गणना हमको नहीं जान पड़ती और न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है। इसलिये इस बात पर अधिक कहना ठीक नहीं।

ईश्वर ने किसलिये इस जगत् को रचा। यद्यपि इसका भी उत्तर हम लोग ठीक-ठीक नहीं जान सकते परन्तु इतना हम जानते हैं कि संसार के सुख के लिये ईश्वर ने यह सृष्टि की है कि जिसमें हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—उसने अपने शरीर से प्रकट अर्थात् उत्पन्न किया। उससे हम अलग नहीं। जो अलग होते तो उस की प्रभुता में न होते। कब से यह संसार बना यह कहना व्यर्थ है। क्योंकि हमको रोटी खाने से काम है; न यह कि रोटी कब बनी है। यह जगत् सृष्टि के लिये रचा गया है, क्योंकि सब पदार्थ मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचे हैं। और हमको अपनी भक्ति के लिये ईश्वर ने रचा है। देखो ! पृथिवी हमारे लिये है; हम पृथिवी के लिये नहीं। क्योंकि जो हम न हों तो पृथिवी की कुछ हानि नहीं। परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है। ऐसे ही जल, वायु, अग्नि आदि सब पदार्थ मनुष्य के लिये रचे गये हैं। मनुष्य सब सृष्टि में श्रेष्ठ है। उसको बुद्धि भी इसी श्रेष्ठता की परीक्षा के लिये दी है अर्थात् मनुष्य को अपनी भक्ति के लिये और इस जगत् को मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—पहले मेरी सब मुसलमानों और ईसाइयों और सुनने वालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिये किया गया है। और यह ही मेला करने वालों का प्रयोजन है कि देखें सब मतों में कौन सा मत सत्य है। जिसको सत्य समझें उसको अङ्गीकार करें। इसलिये यहां हार और जीत की अभिलाषा किसी को न करनी चाहिये। क्योंकि सज्जनों का यह ही मत होना चाहिये कि सत्य की सर्वदा जीत और असत्य की सर्वदा हार होती रहे। परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि पादरी साहब ने यह झूठ कही। ऐसे ही ईसाई कहते हैं कि मौलवी साहब ने यह बात झूठी कही, ऐसी वार्ता करना उचित नहीं। विद्वानों के बीच यह नियम होना चाहिये कि अपने-अपने ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मंडन और असत्य का खंडन कोमल वाणी के साथ करें कि जिससे सब लोग प्रीति से मिलकर सत्य का प्रकाश करें। एक दूसरे की निन्दा करना, बुरे-बुरे वचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि वह हारा और मैं जीता, ऐसा नियम कदाचित् न होना चाहिये। सब प्रकार पक्ष-पात छोड़कर सत्यभाषण करना सब को उचित है। और एक दूसरे से विरोध-वाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है; विद्वानों का नहीं। मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में अथवा और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें।

अब मैं पहले प्रश्न का उत्तर कि "ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किस लिये रचा है" अपनी छोटी सी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूँ—

परमात्मा ने सब संसार को प्रकृति से अर्थात् जिसको अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु नामों से कहते हैं; रचा है। सो यह ही जगत् का उपादान कारण है। जिसका वेदादि शास्त्रों में नित्य करके निर्णय किया है और यह सनातन है। जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् का कारण भी अनादि है। जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं वैसे ही इस जगत् के कारण का भी आदि अन्त नहीं है। जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं उनके कारण से एक परमाणु भी अधिक वा न्यून कभी नहीं होता। जब ईश्वर इस जगत् को रचता है तब कारण से कार्य रचता है। सो जैसा कि यह कार्य जगत् दीखता है वैसा ही इसका कारण है। सूक्ष्म द्रव्यों को मिलाकर स्थूल द्रव्यों को रचता है तब स्थूल द्रव्य होकर देखने और व्यवहार के योग्य होते हैं। और यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है उसको इसी कारण से ईश्वर ने रचा है। जब प्रलय करता है तब इस स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक्-पृथक् कर देता है। क्योंकि जो-जो स्थूल से सूक्ष्म होता है वह आँखों से

दीखने में नहीं आता। तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि वह द्रव्य नहीं रहा। परन्तु वह सूक्ष्म होकर आकाश में ही रहता है क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता और नाश अदर्शन को कहते हैं अर्थात् वह देखने में न आवे। जब एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् हो जाते हैं जब उनका दर्शन :०: नहीं होता। फिर जब वे ही परमाणु मिलकर स्थूल द्रव्य होते हैं तब दृष्टि में आते हैं। यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है और ऐसे ही सदा करता जायेगा। इसकी संख्या नहीं कि कितनी वार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और कितनी वार कर सकेगा। इस बात को कोई नहीं कह सकता।

अब इस विषय को जानना चाहिये कि जो लोग 'नास्ति' अर्थात् अभाव से 'अस्ति' अर्थात् भाव मानते हैं और शब्द से जगत् की उत्पत्ति जानते हैं उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता क्योंकि अभाव से भाव का होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई कहे कि वन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आँखों से देखा तो जो उसके पुत्र होता तो वन्ध्या क्यों कहलाती? फिर उसके पुत्र का अभाव होने से उसके पुत्र का विवाह कब हो सकता है? और जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान में नहीं था और यहां आया हूँ अथवा सर्प बिल में न था और निकल भी आया, तो ऐसी वार्ता विद्वानों की नहीं होती। इसमें कोई प्रमाण नहीं क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं फिर वह क्योंकर हो सकती है। जैसे कि हम लोग अपने-अपने स्थानों में न होते तो यहां चांदापुर में कभी न आ सकते। देखो शास्त्र में भी लिखा है कि—"नासत आत्मलाभः। न सत आत्महानम्" अर्थात् जो है सो आगे को होता है और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता। इससे

:०: जब कोई वस्तु अत्यन्त छोटी हो जाती है तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है। जो किसी वस्तु के टुकड़े करते-करते उसको इतना छोटा कर दें कि फिर उसके टुकड़े होना असम्भव हो जावे तो उसको परमाणु कहते हैं जितनी वस्तुएँ संसार में हैं वे सब परमाणु से बनती हैं। जब किसी पत्थर को तोड़ डालते हैं और उसके अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़ों को पृथक्-पृथक् कर देते हैं तो वे परमाणु कि जिनके इकट्ठे होने से फिर पत्थर बनता है; सदा किसी न किसी स्वरूप से बने रहते हैं। एक परमाणु का भी इस संसार में से अभाव नहीं होता। केवल स्वरूप और गुणों में भेद हुआ करता है। जब मोम की बत्ती को जलाते हैं तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़ी देर में सब बत्ती नहीं रहती। न जाने कि क्या हो गई। परन्तु वे परमाणु जितने बत्ती में थे और ही रूप के वायु के सदृश हो जाते हैं। उनमें के एक परमाणु का भी अभाव कदाचित् नहीं होता॥

स्पष्ट ज्ञात होता है कि विना भाव के भाव कभी नहीं हो सकता। क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसका कारण कोई न हो।

इससे यह सिद्ध हुआ कि भाव से भाव अर्थात् अस्ति से अस्ति होती है। नास्ति से अस्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। यह "वदतो व्याघात" अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के सदृश बात है। पहले किसी वस्तु का अन्यथाभाव कहकर फिर यह कहना कि उसका भाव हो गया; पूर्वापर विरोध है। इसको कोई भी विद्वान् नहीं मान सकता और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध कर सकता है कि बिना कारण के कोई कार्य हो सके। इसलिये अभाव से भाव तथा अर्थात् नास्ति से वा हुकुम से जगत् की उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है। इससे यह ही जानना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से ही सब संसार को रचा है; अन्यथा नहीं।

यहाँ दो प्रकार का विचार स्थित होता है। **एक**—यह कि जो जगत् का कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत् का रूप हुआ तो ज्ञान, सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग बन्ध और मोक्ष सब ईश्वर में हो घटते हैं। फिर कुत्ता, बिल्ली, चोर, दुष्ट आदि सब ईश्वर ही बन गये। **दूसरा**—यह कि जो सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है, तो उत्तर यह है कि कारण तीन प्रकार का होता है। एक उपादान—कि जिसको ग्रहण करके किसी पदार्थ को बनावे। जैसे मट्टी लेकर घड़ा और सोना लेकर गहना और रूई लेकर कपड़ा बनाया जाय। दूसरा निमित्त—जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है। तीसरा साधारण—जैसे चाक आदि साधन और दिशा, काल इत्यादि।

अब जो ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत्रूप बनता है क्योंकि मट्टी से घड़ा अलग नहीं हो सकता। और जो निमित्त मानें तो जैसे कुम्हार मट्टी के बिना घड़ा नहीं बना सकता और जो साधारण मानें जैसे मट्टी से अपने आप बिना कुम्हार घड़ा नहीं बन सकता। इन दोनों व्यवस्थाओं में वह पराधीन वा जड़ ठहरता है। इस लिये जो यह कहते हैं कि ईश्वर जगत् रूप बन गया है तो उनके कहने से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है। इससे ऐसी व्यवस्था माननी चाहिये कि जगत् का कारण अनादि है और नाना प्रकार के जगत् को बनाने वाला परमात्मा है। और इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं और स्थूल कार्यजगत् तथा जीवों के कर्म नित्यप्रवाह से अनादि हैं। ऐसे माने बिना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता।

अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया अर्थात् संसार को बने कितने वर्ष हो गये ? इसका उत्तर दिया जाता है—

सुनो भाइयो ! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं आप लोग नहीं दे सकते। क्योंकि जब आप लोगों के मतों में से कोई अठारह सौ वर्ष से, कोई तेरह सौ वर्ष से और कोई पांच सौ वर्ष से उत्पत्ति कहता है तो फिर आप लोगों के मत में इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता। और हम आर्य लोग सदा से कि जब से यह सृष्टि हुई बराबर विद्वान् होते चले आये हैं। देखो ! इस देश से और सब देशों में विद्या गई है। इस बात में सब देश वालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्यावर्त्त देश से मिस्र देश में और वहाँ से यूनान और यूनान से योरोप आदि में विद्या फैली है। इसलिये इसका इतिहास किसी दूसरे मत में नहीं हो सकता।

देखो ! हम आर्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय विषय में वेद आदि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं कि हजार चतुर्युगी का एक ब्राह्मदिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्म-रात्रि होती है। अर्थात् जगत् की उत्पत्ति होके जब तक कि वर्तमान होता है उसका नाम ब्राह्मदिन है। और प्रलय होके जब तक हजार चतुर्युगीपर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती उसका नाम ब्राह्म-रात्रि है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है। सो इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान हो रहा है। और इससे पहले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं—स्वायम्भव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष। अर्थात् १९६०८५२९७६ वर्षों का भोग हो चुका है और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं। सो हमारे देश के इतिहास में यथार्थ क्रम से सब बातें लिखी हैं। और ज्योतिष शास्त्र में भी मिति-वार प्रति संवत् घटाते बढ़ाते रहे हैं। और ज्योतिष की रीति से जो वर्ष पत्र बनता है उसमें भी यथावत् सबको क्रम से लिखते चले आते हैं। अर्थात् एक-एक वर्ष घटाते और एक-एक वर्ष भोगने में आज तक बढ़ाते आये हैं। इस बात में सब आर्य्यावर्त्त देश के इतिहास एक हैं। किसी में कुछ विरोध नहीं।

फिर जब कि जैन मतवाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया। सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिसको संकल्प कहते हैं और वह यह है—

ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीयेप्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे

कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्तान्तरैकदेशेऽमुकनगरेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमास-पक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्त्तेऽत्रेदं कार्यं कृतं क्रियते वा ।।

जो इसको ही विचार लें तो इससे सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है ।

जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते तो उसको उत्तर यह है कि जो परम्परा से मिति, वार, दिन चढ़ाते चले आते हैं और जब कि इतिहासों और ज्योतिष शास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है तो फिर इसको मिथ्या कोई नहीं कह सकता । जैसे कि बहीखाते में प्रतिदिन मिति वार लिखते हैं और उसको कोई झूठ नहीं कह सकता। और जो यह कहता है उससे भी पूछना चाहिए कि तुम्हारे मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए हैं ? तब वह या तो छः हजार या सात हजार या आठ हजार वर्ष बतलावेगा । तो वह भी अपने पुस्तकों के अनुसार कहता है तो इसी प्रकार उसको भी कोई नहीं मानेगा क्योंकि यह पुस्तक की बात है ।

और देखो भूगर्भविद्या से जो देखा जाता है तो उससे भी यह ही गणना ठीक-ठीक आती है । इसलिए हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है और किसी के मत में कदाचित् नहीं । इसलिये यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सबको ठीक माननी उचित है ।

अब यह कि ईश्वर ने किस लिए सृष्टि को उत्पन्न किया ? इसका उत्तर दिया जाता है—

जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि, और जीव के कर्म तथा कार्यजगत् नित्यप्रवाह से अनादि हैं। जब प्रलय होता है तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो उनके भोग कराने के लिए और फल देने के लिए ईश्वर सृष्टि को रचता है और अपने पक्षपातरहित न्याय को प्रकाशित करता है । ईश्वर में जो ज्ञान, बल दया आदि और रचने की अत्यन्त शक्ति है उनके सफल करने के लिये उसने सृष्टि रची है। जैसे आंख देखने के लिए और कान सुनने के लिए हैं वैसे रचनाशक्ति रचने के लिये है। सो अपनी सामर्थ्य की सफलता करने के लिए ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं। इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन हैं कि जो समय कम रहने से अब नहीं कहे जा सकते । विद्वान् लोग आप जान लेंगे ।

पादरी स्काट साहब—जिसकी सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता ।

जगत् की सीमा का निरूपण है इसलिये वह अनादि नहीं हो सकता। कोई पदार्थ अपने आपको नहीं रच सकता परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से रचा है। कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस पदार्थ से रचा है और पंडित जी ने भी नहीं बताया कि किस पदार्थ से जगत् को रचा।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—जब कि सब पदार्थ सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है। कोई उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(पादरी साहब के उत्तर में)–पादरी साहब मेरे कहने को नहीं समझे। मैं तो केवल जगत् के कारण को ही अनादि कहता हूँ और जो कार्य है सो अनादि नहीं होता। जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है सो उत्पन्न होने से पहले ऐसा न था और न नाश होने के पश्चात् ही ऐसा रहेगा। पर इसमें जितने परमाणु हैं वे नष्ट नहीं होते। इस शरीर के परमाणु पृथक्-पृथक् होकर आकाश में बने रहते हैं और उन परमाणुओं में जो संयोग और वियोग :०: की शक्ति है तो वह सदा उनमें रहती है। जैसा मट्टी से घड़ा बनाया जो कि बनाने के पहले नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा परन्तु जो मट्टी है वह नष्ट नहीं होती। और जो गुण अर्थात् चिकनापन उसमें है कि जिससे वह पिण्डाकार होता है वह भी मट्टी में सदा से है। वैसे ही संयोग और वियोग होने की योग्तता परमाणुओं में सदा से है। इससे यह समझना चाहिए कि जिन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है वे द्रव्य अनादि हैं, कार्य द्रव्य नहीं। और मैंने यह कब कहा था कि जगत् के पदार्थ स्वयं अपने को बना सकते हैं मेरा कहना तो यह था कि ईश्वर ने उस कारण से जगत् को रचा है।

और जो पादरी साहब ने कहा कि शक्ति से जगत् को रचा है तो मैं पूछता हूँ कि शक्ति कोई वस्तु है वा नहीं? जो कहो कि है तो वह अनादि हुई। और जो कहो कि नहीं तो उससे आगे को दूसरी कोई वस्तु भी नहीं बन सकती। और जो पादरी साहब ने कहा कि पंडित जी ने यह नहीं बताया कि किससे यह जगत् बना है उसको प्रकृति आदि नामों से कि जिसको परमाणु भी कहते हैं; कहा था।

:०: सब लोग देखते हैं कि अग्नि में बहुत से पदार्थ जल जाते हैं। अब विचार करना चाहिये कि जब कोई पदार्थ जल जाता है तो क्या हो जाता है देखने में आता है कि लकडी जलकर थोड़ी सी राख रह जाती है। तो अब यह विचारना चाहिए कि जलने से वह पदार्थ ही नष्ट हो जाता है वा उसका स्वरूप ही बदल जाता है? जब मोमबत्ती जलाते हैं तो देखने में वह मोम नहीं रहता। यह जान पड़ता कि कहां गया परन्तु उस मोम का स्वरूप बदलकर वायु के सदृश हो जाता है और इसी कारण वायु में मिल जाने से दृष्टि में नहीं आता।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—सब पदार्थों का कारण अनादि है तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है क्योंकि मट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाय। जो कारण होता है वह आप कार्यरूप नहीं बन सकता क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता। और कोई जीव भी उसको नहीं बना सकता। आज तक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जैसा कि यह मेरा रोम है ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता। और आजतक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उनसे ऐसी वस्तु बना सके। कोई दो त्रसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर की ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे।

देखो ! एक आंख की रचना में ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है। आज तक बड़े-बड़े वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है। कोई नहीं जानता कि किस-किस प्रकार और क्या-क्या गुण ईश्वर ने उसमें रक्खे हैं। इसलिये सूर्य, चांद आदि जगत् का रचना और धारण करना ईश्वर ही का काम है। तथा जीवों के कर्म्मों के फल का पहुँचाना यह भी परमात्मा ही का काम है किसी दूसरे का नहीं। इससे ईश्वर को मानना अवश्य है।

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब—जब दो वस्तु हैं—एक कार्य, दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकते। इससे ईश्वर ने नास्ति से अस्ति अपनी सामर्थ्य से की है।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—गुण दो प्रकार के होते हैं—एक अन्तस्थ दूसरे बाह्य। अन्तस्थ तो अपने में होते हैं और बाह्य दूसरे से अपने में आते हैं। और अन्तस्थ गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं परन्तु जिसके गुण होते हैं

इसकी परीक्षा के लिये एक बोतल के भीतर मोमबत्ती जलाओ और उसका मुख बन्द कर दो तो उस बत्ती का जितना भाग वायु के सदृश हो जावेगा वह बोतल से बाहर नहीं जा सकेगा। पर थोड़ी देर के पीछे यह दिखलाई देगा कि वह बत्ती बुझ गई। अब यह सोचना चाहिए कि बत्ती क्यों बुझगई और बोतल के वायु में अब कुछ भेद हुआ वा नहीं ? इस बात की परीक्षा इस प्रकार होगी कि थोड़ा सा चूने का पानी उस बोतल में और एक और बोतल में जिसमें केवल वायु भरा हुआ हो और उसमें कोई बत्ती न जली हो, डालो; तो यह दिखलाई देगा कि जिस बोतल में जली है उसमें चूने का रंग दूध सा हो जावेगा और दूसरी बोतल का जैसे का तैसा रहेगा। इससे सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कोई नई वस्तु बोतल के वायु में मिल गई है। वह एक वस्तु वायु के सदृश है कि जो दृष्टि में नहीं आती। अब देखना चाहिए कि मोमबत्ती का कोई परमाणु नष्ट नहीं होता पर जिन पदार्थों से वह बत्ती बनी है उनका स्वरूप भिन्न हो जाता है॥

वह उससे पृथक् होता है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस वर्तन में पड़ता है वैसा ही बन जाता है परन्तु सूर्य नहीं हो जाता। वैसे ही ईश्वर ने हमको अपनी इच्छा से बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(ईसाई साहब के उत्तर में)—आप दोनों के अनादि होने में क्यों शंका करते हैं? क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने हैं उन सबका कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि हैं। और जीव भी अनादि हैं कि जिनकी संख्या कोई नहीं बता सकता। और नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती सो मैं पहले कह चुका हूँ। परन्तु आप जो कहते हैं कि शक्ति से बनाया तो बतलाओ कि शक्ति क्या वस्तु है? जो कहो कि कोई वस्तु है तो फिर वही कारण ठहरने से अनादि हुई। और ईश्वर के नाम, गुण, कर्म सब अनादि हैं; कोई अब नहीं बने।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—आप जो यह कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है तो भी नहीं हो सकता क्योंकि गुण द्रव्य के विना अलग नहीं रह सकते और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता। जब भीतर के गुणों से जगत् बना है तो जगत् भी ईश्वर हुआ। जो यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना तो ईश्वर के सिवाय आपको भी वे गुण और द्रव्य अनादि मानने पड़ेंगे। और जो यह कहो कि इच्छा से हम लोग बन गये तो मेरा यह प्रश्न है कि इच्छा कोई वस्तु है वा गुण है? जो वस्तु कहोगे तो वह अनादि ठहर जायगी और जो गुण मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता परन्तु मट्टी से बनता है तो वैसे ही इच्छा से हम लोग नहीं बन सकते।

पादरी स्काट साहब—हम लोग इतना जानते हैं कि नास्ति से अस्ति को ईश्वर ने बनाया। यह हम नहीं जानते कि किस पदार्थ से और किस प्रकार यह जगत् बनाया। इसको ईश्वर ही जानता है। मनुष्य कोई नहीं जान सकता।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—ईश्वर ने अपने प्रकाश से जगत् बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(पादरी साहब के उत्तर में) कार्य को देखकर कारण को देखना चाहिये कि जो वस्तु कार्य है वैसा ही उसका कारण होता है। जैसे घड़े को देखकर उसका कारण मिट्टी जान लिया जाता है कि जो वस्तु घड़ा है वही वस्तु मट्टी है। आप कहते हैं कि अपनी शक्ति से जगत् को रचा, सो मेरा यह प्रश्न है कि वह शक्ति अनादि है वा पीछे से बनी है? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उसको मान लो तो उसी को जगत् का अनादि कारण मानना चाहिये।

(मौलवी साहब के उत्तर)—नूर कहते हैं प्रकाश को, उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता। परन्तु वह नूर मूर्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध दिखला

सकना है और वह प्रकाश करने वाले पदार्थ के बिना अलग नहीं रह सकता। इससे जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है उसको माने बिना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। और हम लोग भी कार्य को अनादि नहीं मानते परन्तु जिससे कार्य बना है उस कारण को अनादि मानते हैं।

एक हिन्दुस्तानी ईसाई साहब—जो ईश्वर ने अपनी प्रकृति से सब संसार को रचा तो उसकी प्रकृति में सब संसार सनातन था। और वह उसकी प्रकृति में अनादि था तो ईश्वर की सीमा हो गई।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—जबकि ईश्वर की प्रकृति में सब जगत् था तब ही तो वह अनादि हुआ और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई। अर्थात् लम्बा-चौड़ा, बड़ा-छोटा आदि सब प्रकार का ईश्वर ने उसमें से बनाया। इसलिये रचे जाने से केवल जगत् ही की सीमा हुई; ईश्वर की नहीं।

अब देखिये मैंने जो पहले कहा था कि नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है सो आप लोगों के कहने से भी वह बात सिद्ध हो गई कि जगत् का कारण अनादि है।

ईसाई साहब—सुनो भाई मौलवी साहबो! कि पण्डित जी इसका उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं। हम और तुम हजारों मिलकर भी इन से बात करें तो भी पण्डित जी बराबर उत्तर दे सकते हैं। इसलिये इस विषय में अधिक कहना उचित नहीं।

ग्यारह बजे तक यह वार्ता सिद्ध हुई। फिर सब लोग अपने-अपने डेरों को चले गये। और सब जगह मेले में यही बातचीत होती थी कि जैसा पण्डित जी को सुनते थे उससे सहस्रगुणा पाया।

दोपहर के पश्चात् की सभा

फिर एक बजे सब लोग आये और इस पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा और बातें बहुत बाकी हैं इसलिये केवल मुक्ति विषय पर विचार करना उचित है। प्रथम थोड़ी देर तक ये बातें होती रहीं कि पहले कौन वर्णन करे? एक दूसरे पर टालता था। तब स्वामी जी ने कहा कि उसी क्रम से भाषण होना चाहिये। अर्थात् पहले पादरी साहब, फिर मौलवी साहब और फिर मैं। परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने कहा कि हम पहले न बोलेंगे तब स्वामी जी ने ही पहले कहना स्वीकार किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—मुक्ति कहते हैं छूट जाने को अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे सब छूटकर एक सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर

सदा आनन्द में रहना फिर जन्म-मरण आदि दुःखसागर में नहीं गिरना। इसी का नाम मुक्ति है। वह किस प्रकार से होती है? इसका पहला साधन सत्य का आचरण है और वह सत्य आत्मा और परमात्मा की साक्षी से निश्चय करना चाहिये अर्थात् जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो, वह असत्य है। जैसे किसी ने चोरी की। जब वह पकड़ा गया उससे राजपुरुष ने पूछा कि तू ने चोरी की या नहीं? तब तक वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की। परन्तु उसका आत्मा भीतर से कह रहा है कि मैंने चोरी की है। तथा जब कोई झूठ की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उसको जता देता है कि यह बुरी बात है। इसको तू मत कर। और लज्जा, शंका और भय आदि उसके आत्मा में उत्पन्न कर देता है। और जब सत्य की इच्छा करता है तब उसके आत्मा में आनन्द कर देता है। और प्रेरणा करता है कि यह काम तू कर। अपना आत्मा जैसे सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है वैसे झूठ में नहीं होता। जब परमात्मा की आज्ञा को तोड़कर बुरा काम कर लेता है तब उस की मुक्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। और उसी को असुर, दुष्ट, दैत्य और नीच कहते हैं। इसमें वेद का प्रमाण है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

यजुर्वेद, अध्याय ४०। मन्त्र ३॥

आत्मा का हिंसन करने वाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा को तोड़ता है और अपने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध बोलता, करता और मानता है उसी का नाम असुर, राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है।

मुक्ति के मिलने के साधन ये हैं १—सत्य आचरण। २—सत्यविद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना। ३—सत्यपुरुष ज्ञानियों का संग करना। ४—योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना। ५—परमेश्वर की स्तुति करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना। ६—प्रार्थना कि जो इस प्रकार होती है कि—हे जगदीश्वर! हे कृपानिधे! हे अस्मत्पितः! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर कर और हे भगवन्! हम को अन्धकार अर्थात् अज्ञान और अधर्म आदि दुष्ट कामों से अलग करके विद्या और धर्म आदि श्रेष्ठ कामों में सदा के लिये स्थापन कर। और हे ब्रह्म! हम को जन्म-मरणरूप संसार के दुःखों से छुड़ाकर अपनी कृपाकटाक्ष से अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर।